RNI No.: MPBIL/2001/5256
DAVP Code : 128101
Postal Registration No. : भोपाल/म.प्र./581/2021-2023
Publish Date : Every Month Dt. 05
Posting Date : Every Month Dt. 15
Rs. 10/-

मध्यप्रदेश/छत्तीसगढ़

वर्ष 24 अंक 09 05 मई 2024

जगत विज़न

कम मतदान सकते में बीजेपी

400+ सीटों के सपने पर लग सकता है ग्रहण

क्या राजनीति के गिरते स्तर से कम हो रहा मतदान?

प्रेरणा स्त्रोत : स्व. श्री जगत पाठक

निर्भीक पत्रकारिता

संपादक	विजया पाठक
कार्यकारी संपादक	समता पाठक
दिल्ली संवाददाता	नीरज दिवाकर
पश्चिम बंगाल ब्यूरो चीफ	अमित राय
विशेष संवाददाता	अर्चना शर्मा

सम्पादकीय एवं विज्ञापन कार्यालय

भोपाल

एफ-116/17, शिवाजी नगर, भोपाल

मो. 98260-64596, मो. 9893014600

फोन : 0755-4299165 म.प्र. स्वत्वाधिकारी,

छत्तीसगढ़

4-विनायका विहार, रिंग रोड, रायपुर

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक,

विजया पाठक द्वारा समता ग्राफिक्स

एफ-116/17, शिवाजी नगर, भोपाल म.प्र. द्वारा कम्पोज एवं जगत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्लाट नं. 28 सुरभि विहार बीडीए रोड भेल भोपाल से मुद्रित एवं एफ-116/17, शिवाजी नगर, भोपाल म.प्र. से प्रकाशित संपादक विजया पाठक। समस्त विवादों का कार्यक्षेत्र भोपाल सत्र-न्यायालय रहेगा। पत्रिका में प्रकाशित किये जाने वाले संपूर्ण आलेख एवं सामग्री की जिम्मेदारी लेखक एवं संपादक की होगी।

E-mail : jagat.vision@gmail.com

Website: www.jagatvision.co.in

मासिक द्विभाषी पत्रिका वर्ष 24 अंक 9 05 मई 2024

(पृष्ठ क्र.-6)

- सरकार रूपी रोटी को उलटते-पलटते रहें 24
- भ्रष्टाचार और अत्याचार के आखंड में डूबी थी भूपेश सरकार ...28
- बेलगाम नक्सलियों पर कसता शिकंजा 32
- व्यवस्थापन की नीति न्यायसंगत बने 35
- नेपाल में हिंदू राष्ट्र के लिए शंखनाद 38
- सत्ता पर सिब्बल का कड़ा प्रहार 42
- ये कैसी राजनीति, कैसा चुनाव प्रचार 44
- जल-संकट से जूझती दुनिया की आधी आबादी 46
- Dalit reading of 1857 mutiny 60

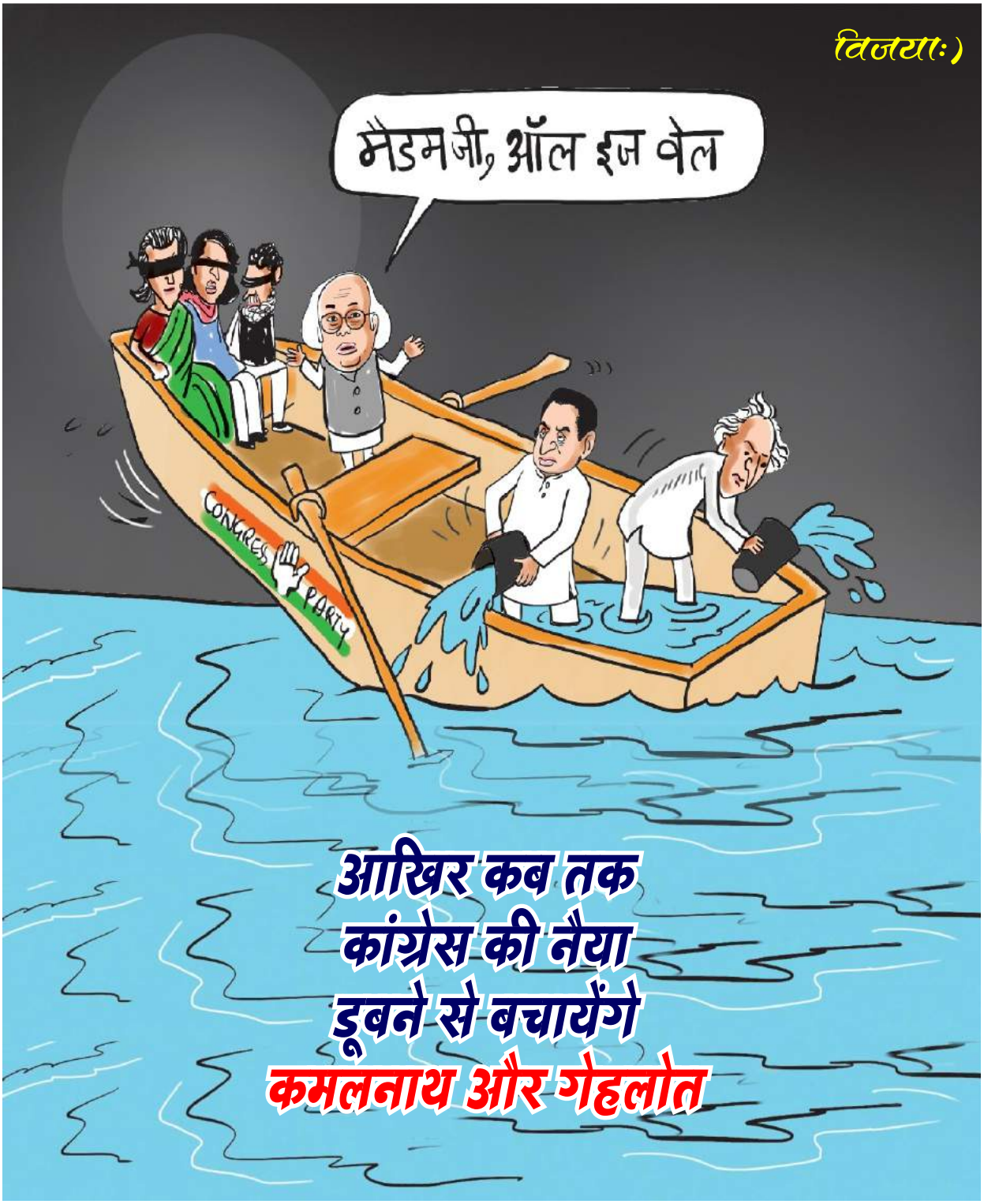
विजया:)
मैडमजी, ऑल इज वेल
CONGRESS PARTY
आखिर कब तक
कांग्रेस की नैया
डूबने से बचायेंगे
कमलनाथ और गेहलोत

लोकसभा चुनाव : नेताओं के वादे और मुद्दे

आम चुनाव में वैसे तो सीधे भारतीय जनता पार्टी और कांग्रेस में सीधा साथ गठबंधन कर लड़ रहे हैं, इसलिए इस लड़ाई को एनडीए विरुद्ध इंडिया गठबंधन के बीच माना जा रहा है। अब तक दो चरणों का मतदान हो चुका है और तीसरा चरण 07 मई को होना है। अब बात करते हैं चुनाव में उछल रहे मुद्दों की। भाजपा की बात करें तो प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी, केंद्रीय गृहमंत्री अमित शाह, राष्ट्रीय अध्यक्ष जेपी नड्डा सहित उसके तमाम नेता विकास, राष्ट्रवाद और सरकार के कामकाज की बात उठाकर मत मांग रहे हैं। उनका साफ कहना है कि देश ने पिछले दस वर्षों में खासी प्रगति की है, जिससे भारत का डंका पूरी दुनिया में बज रहा है। साथ ही कांग्रेस द्वारा जिस तरह से मुस्लिम तुष्टिकरण को बढ़ावा दिया जा रहा है, उस पर सत्ता दल जमकर हमलावर हैं। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा विरासत कानून पर गांधी परिवार को आड़े हाथों लिए जाने पर अब प्रियंका गांधी इंदिरा और राजीव गांधी की शहादत को तूल देकर भावनात्मक अपील कर मतदाताओं को लुभाने की कोशिश में हैं। राहुल गांधी ने अपनी यात्रा में जिस तरह से जातिगत व्यवस्था पर फोकस किया, वहीं काम वह चुनावी सभाओं में भी कर रहे हैं। वह बार-बार जातिगत मतगणना कराने की बात दोहरा रहे हैं। इसके साथ ही राहुल-प्रियंका द्वारा पिछले लोकसभा चुनाव की तरह इस बार भी मोदी सरकार पर कुछ उद्योगपतियों को लाभ दिलाकर उनके इशारे पर सरकार चलाने का आरोप लगा रहे हैं लेकिन हमेशा की तरह यह दांव कच्चा साबित हो रहा है। चुनाव में जहां भाजपा के पास नेताओं की फौज है, तो वहीं सबसे पुराने दल को आज भी गांधी परिवार के इर्द-गिर्द ही घूमना पड़ रहा है। राष्ट्रीय अध्यक्ष मल्लिकार्जुन खड़गे नाम के लिए ही है। उन्हें कोई प्रत्याशी बुलाने को तैयार नहीं है। इसलिए कांग्रेस आखिर किस मुद्दे पर चुनाव लड़ रही है, यह उसके कार्यकर्ताओं तक की समझ में नहीं आ रहा। और तो और देश दुनिया के हिंदुओं के आस्था के केंद्र राम मंदिर मुद्दे पर पिटने के बावजूद आज भी राहुल गांधी के बिगड़े बोल सुनाई दे रहे हैं जबकि इस मुद्दे पर तमाम कांग्रेस नेता पार्टी को अलविदा कहकर भाजपा में शामिल हो चुके हैं। फिर भी कांग्रेस ने सबक न लेकर कभी भी राम मंदिर दर्शन की बात न कर हमेशा कोसने का ही काम किया है। जिससे आम जनता समझ चुकी है कि मुस्लिम तुष्टिकरण और उन्हें आरक्षण की वकालत से कांग्रेस पीछे नहीं हट रही। जिसका सीधा लाभ भाजपा को मिल रहा है। वह कांग्रेस के घोषणा पत्र को मुस्लिम लीग की झलक वाला बताने से नहीं चूक रहे। ऐसे में लगातार तीसरी बार सरकार बनाने की ओर अग्रसर भाजपा के जहाज को रोका पाना इस चुनाव में कांग्रेस के बूते की बात दिखाई नहीं दे पा रही। यही कारण है कि पूरे चुनाव में सत्ता दल के नेता कांग्रेस पर हमले कर रहे हैं जिसका पलटवार कांग्रेस के पास नहीं है।

विजया पाठक

कम मतदान सकते में बीजेपी

400+ सीटों के सपने पर लग सकता है ग्रहण

क्या राजनीति के गिरते स्तर से कम हो रहा मतदान?

देश में लोकसभा चुनाव 2024 के लिए दो चरणों के मतदान हो चुके हैं। आगामी दिनों में पांच चरणों के मतदान होना बाकी है। खास बात यह है कि अब तक संपन्न हुए दो चरणों के मतदान में कम वोट प्रतिशत सामने आया है। कम होते मतदान से सत्ताधारी बीजेपी को सकते में डाल दिया है। क्योंकि इतिहास गवाह है कि जब-जब भी मतदान का प्रतिशत घटा है नुकसान सत्ताधारी पार्टी को ही ज्यादा हुआ है। इसके कारण भी हैं। बीजेपी वर्तमान में 400+ का आंकड़ा लेकर चल रही है। इस जादुई आंकड़े को पार करने में मतदान का होना बहुत आवश्यक है। यही कारण है कि मतदान कम होने की सबसे ज्यादा चिंता बीजेपी को ही हो रही है। मतदान प्रतिशत बढ़ाने के कई जतन भी कर रही है। मतदान प्रतिशत कम होना इस बात की ओर साफ इशारा करता है कि आम जनता को सत्ताधारी दल पर बिल्कुल भरोसा नहीं है और वह बिल्कुल नहीं चाहती कि यह सरकार दोबारा कार्यकाल संभाले। कम मतदान पर कहा जाता है कि वोटरों में सरकार के प्रति उत्साह नहीं है। उदासीनता है। जैसा चल रहा है वैसा ही चलता रहेगा लेकिन भारत में चुनावों का इतिहास बताता है कि कम या ज्यादा मतदान के नतीजे मिले-जुले ही आते रहे हैं। परिवर्तन और यथास्थिति के अनुमान को किसी फॉर्मूले पर नहीं कसा जा सका है। फिर भी गिरते वोट प्रतिशत ने सभी दलों को बेचैन कर दिया है। हार के खतरे का आकलन दोनों तरफ से किया जा रहा है। चुनाव आयोग की ओर से जारी आंकड़ों के मुताबिक दो चरणों में अब तक मतदान का प्रतिशत 66 प्रतिशत ही रहा है। पहले चरण में 66.14 प्रतिशत और दूसरे चरण में 66.71 प्रतिशत मतदान हुआ है। मतदान प्रतिशत के इस अंतर ने सत्ताधारी दल भाजपा नेताओं के माथे पर लकीरे खींच दी है। यही कारण है कि मतदान प्रतिशत कम होने से बौखलाए केंद्रीय गृहमंत्री अमित शाह ने भाजपा शासित राज्यों के मुख्यमंत्री सहित मंत्रियों को स्पष्ट निर्देश दिये हैं कि अगर लोकसभा चुनाव में मतदान प्रतिशत कम हुआ तो जिन क्षेत्रों के मंत्रियों में मतदान का प्रतिशत कम होगा वह उस सीट के मंत्री विधायक के लिए ठीक नहीं होगा। शाह की दो टूक के बाद मध्यप्रदेश सहित देश के विभिन्न भाजपा शासित राज्यों में नेताओं और मंत्रियों के बीच भूचाल आ गया है और हर कोई अब केवल मतदान प्रतिशत बढ़ाने की जुगत में लग गया है। उधर तमाम विपक्ष कम मतदान को लेकर निश्चिंत नजर आ रहा है। शायद उसको लग रहा है कि कम मतदान से बीजेपी को ही नुकसान होने वाला है। लेकिन यहां एक बात जरूर समझनी होगी। लोकतंत्र की विश्वसनीयता के लिए मतदान होना बहुत आवश्यक है। वोटिंग किसी भी पार्टी के लिए हो वह होना चाहिए। लोगों को अपने मत का उपयोग जरूर करना चाहिए। यह लोकतंत्र के प्रति आस्था और विश्वास को दर्शाता है। अभी केवल कुछ चरणों में मतदान हुआ है। आगामी दिनों में और मतदान होना है। लग रहा है कि आगामी चरणों में यह प्रतिशत और कम होगा। ऐसी परिस्थितियों में हर पार्टी को चिंता होना लाजिमी है। एक टेलीविजन द्वारा किये गये सर्वे में सामने आया है कि 2019 से 2024 तक मतदान प्रतिशत कम हुआ है। 2019 में मतदान प्रतिशत 70 प्रतिशत था जो 2024 में घटकर 64 प्रतिशत हो गया है। बीजेपी-एनडीए और विपक्षी गुट दोनों अब अगले चरण के लिए मतदान प्रतिशत बढ़ाने की कोशिश कर रहे हैं।

विजया पाठक

लोकसभा चुनाव 2024 में दो चरणों का मतदान पूरा हो चुका है। 14 राज्यों में वोटिंग पूरी होने के बाद मतदान प्रतिशत 2019 की तुलना में कम रहना चौंकाने वाला है। मतदान को लेकर पार्टियों की मिली-जुली प्रतिक्रियाओं के साथ जीत-हार के दावे भी हो रहे हैं। पहले चरण की तरह दूसरे चरण में मतदान का प्रतिशत कम रहा। लगातार दूसरे चरण में मतदान प्रतिशत कम रहने से तमाम पार्टियां अपने-अपने दावे कर रही हैं। मतदान के कम प्रतिशत के क्या मायने हैं? चुनाव को लेकर मतदाताओं में उदासीनता क्यों है? सभी राजनीतिक दलों को यह चिंता करनी चाहिए कि आखिर मतदान का प्रतिशत कम क्यों हो रहा है? इसमें सभी अपने-अपने हिसाब से फायदे और नुकसान की बात कर रहे हैं। मतदाता के विवेक पर हम टिप्पणी नहीं कर सकते कि वह क्या फैसला देगा। इसके साथ ही यह जरूर है कि यह एक दुखद विषय है।

डाटा कहता है कि पहली बार के मतदाताओं में से 62 फीसदी ने अपना पंजीकरण तक नहीं कराया है। यह राजनीतिक दलों के लिए सोचने का विषय है। यह पक्ष और विपक्ष दोनों के लिए चिंता का विषय है। 2019 और 2024 में फर्क यह भी है कि 2024 में वैसे मुद्दे नहीं हैं, जैसे 2019 में थे।

लोकतंत्र के प्रति यह उदासीनता क्यों हो रही है, इसकी चिंता आम लोगों से ज्यादा राजनीतिक दलों को होनी चाहिए। डाटा कहता है कि पहली बार के मतदाताओं में से 62 फीसदी ने अपना पंजीकरण तक नहीं कराया है। यह राजनीतिक दलों के लिए सोचने का विषय है। यह पक्ष और विपक्ष दोनों के लिए चिंता का विषय है। 2019 और 2024 में फर्क यह भी है कि 2024 में वैसे मुद्दे नहीं हैं, जैसे 2019 में थे। अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग चेहरे पर विपक्ष लड़ रहा है। वोटिंग कम होने का एक बड़ा कारण यह है कि मतदाताओं में न तो पक्ष के प्रति, न ही विपक्ष के प्रति कोई उत्साह है। 02 चरण के संपन्न मतदान को देखें तो पहले चरण में 102 और दूसरे चरण में 88 सीटों पर वोट डाले गए। पहले फेज

की वोटिंग में 65.5 प्रतिशत वोट पड़े। वहीं दूसरे फेज में 66 प्रतिशत मतदाताओं ने ही अपने मताधिकार का इस्तेमाल किया। दोनों ही चरण में पूरे देश में मतदान प्रतिशत में गिरावट देखी गयी है। कई ऐसी सीटें हैं जहां 50 प्रतिशत से भी कम वोट पड़े। अब तक पूरे देश में सबसे कम मतदान बिहार के नवादा संसदीय सीट पर देखने को मिली है।

पहले और दूसरे चरण में जिन 20 सीटों पर सबसे कम मतदान हुए हैं। उन सभी सीटों पर एनडीए का कब्जा है। कई ऐसी सीटे भी हैं जहां पिछले 10 साल से एनडीए के उम्मीदवार ही जीत रहे थे।

प्रथम द्वितीय चरण के मतदान की समीक्षा तो कई कोण से की जा रही है पर दो तरह की बातें प्रमुखता से आ रही हैं। पहली बात भाजपा को चिंतित करने वाली है तो दूसरी विपक्ष को। भाजपा के चार सौ पार के नारे ने राजग के समर्थकों में अति विश्वास का भाव भर दिया है। लोकसभा चुनाव 2024 के दूसरे फेज में 63 प्रतिशत मतदाताओं ने ही अपने मताधिकार का इस्तेमाल किया। जबकि 2019 में इन्हीं सीटों पर 70.05 प्रतिशत लोगों ने बढ़-चढ़कर वोट किया था। लोकसभा चुनाव के लिए पहले और दूसरे फेज का मतदान पूरा हो गया है। इस बीच कम वोटिंग टर्न आउट या कम वोटिंग ट्रेंड को लेकर नई बहस और सियासी गुणा-गणित का दौर शुरू हो गया है। 19 अप्रैल को 21 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों की कुल 102 सीटों पर वोटिंग हुई। पहले फेज की वोटिंग में करीब 63 प्रतिशत वोट पड़े। जबकि इन्हीं सीटों पर 2019 के आम चुनाव में 66.44 प्रतिशत वोटिंग हुई थी। 26 अप्रैल को 12 राज्यों और एक केंद्र शासित प्रदेश की कुल 88 सीटों पर मतदान हुआ। दूसरे फेज में 63 प्रतिशत मतदाताओं ने ही अपने मताधिकार का इस्तेमाल किया। जबकि 2019 में इन्हीं सीटों पर 70.05 प्रतिशत लोगों ने बढ़-चढ़कर वोट किया था। दूसरे फेज में त्रिपुरा में सबसे ज्यादा करीब 78.63 प्रतिशत वोटिंग हुई। महाराष्ट्र, बिहार और उत्तर प्रदेश में सबसे कम 54 प्रतिशत के आसपास वोट डाला गया। असम में 70.68 प्रतिशत

चिंताजनक है मतदान में कमी

इस बार लोकसभा चुनाव में कोई जोश नहीं दिख रहा है। नेताओं की रैलियों में भीड़ दिख रही है लेकिन पार्टियों को ही पता है कि वह भीड़ कैसे आ रही है। कितनी मेहनत करनी पड़ रही है और कितने जतन करने पड़ रहे हैं। लोगों को लाने के लिए मेहनत करनी पड़ रही है। लोग नेताओं की रैलियों में नहीं पहुंच रहे हैं। मतदान केंद्रों पर भी लोग पहले जैसे जोश और उत्साह के साथ नहीं पहुंच रहे हैं। पहले दो चरण में जिन राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों की 189 सीटों पर मतदान हुआ उनमें से कई राज्यों में हीटवेव चल रही थी। लेकिन मध्य प्रदेश के मुख्य चुनाव अधिकारी ने खुल कर कहा कि मतदान में कमी आने के लिए गर्मी जिम्मेदार नहीं है। यह बात काफी हद तक सही है क्योंकि पिछले चार आम चुनाव अप्रैल और मई में ही हुए हैं और हर बार ऐसी ही गरमी होती है। लेकिन 2004 के चुनाव को छोड़कर कभी न तो मतदान प्रतिशत में गिरावट आई और न ज्यादा गरमी होने की चर्चा हुई। 2004 में जरूर 1.92 फीसदी की कमी आई थी और तब सरकार बदल गई थी। यह भाजपा के लिए चिंता की बात हो सकती है क्योंकि इस सदी में अब तक हुए चार आम चुनावों में मतदान का प्रतिशत कम होने से अटल बिहारी वाजपेयी ने सत्ता गंवा दी थी। उसके बाद से तीनों चुनावों में मतदान प्रतिशत में इजाफा हुआ। अब 2024 के चुनाव में पहले दो चरण में क्रमशः साढ़े चार फीसदी और तीन फीसदी की कमी दर्ज की गई है। चुनाव से जोश नदारद है और लोग लोकतांत्रिक प्रक्रिया में ज्यादा उत्साह के साथ नहीं शामिल हो रहे हैं? ध्यान रहे दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में करीब एक सौ करोड़ मतदाताओं की भागीदारी सिर्फ पांच साल में एक बार वोट देने तक ही सीमित है। इसके अलावा आम लोगों का लोकतंत्र या चुनी हुई सरकार के साथ कोई संपर्क या संबंध नहीं रहता है। सरकार को जवाबदेह बनाने के लिए दबाव की राजनीति या प्रदर्शन, आंदोलन वगैरह तो पहले भी कम ही होते थे लेकिन अब तो और भी कमी आ गई है। तभी यह भारत के लिए ज्यादा बड़ी चिंता की है लोगों को पांच साल में एक बार लोकतांत्रिक अधिकार के इस्तेमाल का मौका मिल रहा है और वे इसका इस्तेमाल नहीं कर रहे हैं। उनकी उदासीनता समझ में नहीं आने वाली है। क्या यह केंद्र की नरेंद्र मोदी सरकार से मोहभंग है या यह आश्वस्त है कि मोदी तो फिर जीत ही रहे हैं या यह भारतीय राजनीति में आए ठहराव का संकेत है? क्या ऐसा हो सकता है कि भारत में मतदान का प्रतिशत 70 फीसदी के ऐसे स्तर पर पहुंच गया है, जहां से इसमें वैसी बढ़ोतरी नहीं हो सकती है, जैसे पहले के चुनावों में होती रही है? क्या इसको भारत में मतदान की उपरी सीमा मान लें?

लोगों ने घरों से निकलकर वोट डाला। छत्तीसगढ़ में 73.05 प्रतिशत वोटिंग दर्ज की गई। जम्मू-कश्मीर में 71.63 प्रतिशत लोगों ने मताधिकार का इस्तेमाल किया। कर्नाटक और केरल में क्रमशः 67 प्रतिशत और 65.28 प्रतिशत वोटिंग हुई। मध्य

चाक चौराहों पर नदारद है चुनावी चर्चा

मतदान प्रतिशत कम होना एक बात है और उत्साह नदारद होना दूसरी बात है। लोग राजनीति पर चर्चा करते हुए नहीं हैं। कहीं नरेंद्र मोदी को जिताने या हराने के लिए लोग उत्साहित नहीं दिख रहे हैं। चाय की दुकानों और चौराहों पर होने वाली चर्चाओं में भी वह गर्मी नहीं है, जो पिछले पिछले दो चुनावों में देखने को मिली। लोग नरेंद्र मोदी के समर्थन में या राहुल गांधी के विरोध में मरने मारने पर उतारू नहीं हो रहे हैं। वे सहज भाव से मोदी की शिकायत भी सुन रहे हैं और राहुल की तारीफ भी सुन रहे हैं, जबकि पहले इन बातों पर जंग छिड़ जाती थी। सार्वजनिक स्पेस में मोदी की शिकायत और राहुल की तारीफ करना जोखिम का काम था। लेकिन अब ये दोनों काम हो रहे हैं। लोग मोदी का भी मजाक उड़ा रहे हैं, उनकी बातों की अनदेखी कर रहे हैं, नाचते गाते उनकी सभाओं में नहीं जा रहे हैं, बल्कि उनके भाषण के बीच उठकर जाने लग जा रहे हैं। हालांकि यह जरूरी नहीं है कि ऐसा करने वाले उनको वोट नहीं देंगे लेकिन जो जुनून था, जोश था, उम्मीदें थीं वह नदारद है। इसके अलावा एक कारण यह समझ में आता है कि इस बार चुनाव प्रचार में कोई केंद्रीय मुद्दा नहीं है। राज्यों में भाजपा के नेतृत्व और कैडर दोनों में कंफ्यूजन रहा कि किस मुद्दे पर चुनाव लड़ना है। जनवरी में लग रहा था कि अयोध्या में राममंदिर के मुद्दे पर चुनाव होगा, लेकिन वह मुख्य मुद्दा नहीं है। प्रधानमंत्री मोदी ने जब कहा कि 370 हटाया है तो लोग 370 सीटें देंगे तब लगा कि यह एक मुद्दा होगा लेकिन यह भी मुद्दा नहीं बना। विपक्षी पार्टियों के नेताओं के खिलाफ केंद्रीय एजेंसियों की इतनी कार्रवाई के बावजूद भ्रष्टाचार का भी मुद्दा नहीं बना। भाजपा के घोषणापत्र में एक देश, एक चुनाव का वादा है और समान नागरिक संहिता का भी वादा है लेकिन इसे भी केंद्रीय मुद्दा बनाकर चुनाव नहीं लड़ा जा रहा है। न तो हिंदुत्व की थीम है और न राष्ट्रवाद की और न प्रधानमंत्री मोदी की विश्व गुरूवाली छवि और मजबूत नेतृत्व का मुद्दा है। भाजपा के मुकाबले विपक्ष ने जरूर संविधान व लोकतंत्र बचाने का मुद्दा बनाया है या खजाना खोलकर नागरिकों को बहुत सारी चीजें देने का भी वादा किया है लेकिन भ्रष्टाचार, महंगाई और बेरोजगारी का सबसे अहम मुद्दा अब भी चर्चा में नहीं है। कह सकते हैं कि भाजपा ने और खास कर प्रधानमंत्री ने इन मुद्दों से ध्यान भटकाने के लिए सांप्रदायिक ध्रुवीकरण के मुद्दे उठा दिए हैं और संपत्ति छीन कर मुसलमानों को देने का नैरेटिव चलाया है। इसका फायदा या नुकसान बाद में पता चलेगा लेकिन अभी लग रहा है कि इससे वास्तविक मुद्दों से ध्यान हटा है। यह भी एक कारण है कि चुनाव में लोगों की भागीदारी और उत्साह कम देखने को मिल रहा है।

प्रदेश में कुल 56.60 प्रतिशत लोगों ने वोट डाला। पश्चिम बंगाल में 71.84 प्रतिशत लोगों ने मताधिकार का इस्तेमाल किया। राजस्थान में 63.74 प्रतिशत, मणिपुर में 77.18 प्रतिशत लोगों ने वोटिंग की। त्रिपुरा पूर्व सीट पर सबसे ज्यादा 78.1 प्रतिशत

वोटिंग हुई। जबकि मध्य प्रदेश की रीवा सीट पर 45.9 प्रतिशत मतदान हुआ।

वोटिंग घटने या बढ़ने के क्या हैं मायने?- कम वोटिंग टर्न आउट अच्छी खबर नहीं है। इस समझ में आता है कि लोकसभा चुनाव को लेकर वोटरों में कुछ उदासीनता है। अगर हम 2019 के आम चुनावों से तुलना करें, तो उदासीनता साफ दिखाई पड़ती है। कम वोटिंग से किसे लाभ मिलेगा और किसका नुकसान होगा। वास्तव में इसका कोई हिसाब नहीं होता है। कई बार वोटिंग टर्न आउट गिरता है, फिर भी सरकारें जीत कर केंद्र में आती हैं। कई बार वोटिंग टर्न आउट कम होने से सरकारें हारती भी हैं। बीते 17 लोकसभा चुनावों में वोटिंग ट्रेंड देखें, तो 05 बार मतदान घटा है और 04 बार सरकार बदल गई। 7 बार मतदान बढ़ा, तो 04 बार सरकार बदली। कम वोटिंग से किसे फायदा होगा और किसे नुकसान होगा, ये कहना मुश्किल है। अभी तक ऐसा होता रहा है कि जो पार्टी सत्ता में होती है, उसके प्रति चुनाव में मतदाताओं का उत्साह कुछ कम रहता है। जिसका ज्यादा रुतबा दिखता है, मतदाता उसके पक्ष में मतदान ज्यादा

क्या मतदाता का मूड समझने में नाकाम हैं पार्टियां?

करते हैं। लेकिन पिछले कुछ चुनावों से ऐसा नहीं हो रहा है। मतलब ये एक सेट पैटर्न नहीं है। हमें ये बात मान लेनी होगी कि हमारा मतदाता बहुत चतुर है। भारत का मतदाता बहुत ध्यान से वोट करता है। वोटर तीन तरह के होते हैं। पहला- जिन्होंने बीजेपी और पीएम मोदी को वोट देने का फैसला पहले ही कर लिया है। दूसरा- विपक्ष वाला मतदाता भी अपना माइंड सेट बनाकर रखता है। तीसरा- स्विंग वोटर्स को लेकर ही असली लड़ाई होती है। कम वोटिंग ट्रेंड जरूर इसलिए बुरी खबर है कि भारतीय मतदाता अभी भी तटस्थ हैं। कम वोटिंग ट्रेंड का राष्ट्रीय स्तर पर भले ही कोई बात न निकल आए, लेकिन एक विशेष सीट पर और विशेष क्षेत्र पर कम वोटिंग के अपने मायने और अपनी वजहें हो सकती हैं। राजनीतिक पार्टियों को उम्मीद थी कि पहले फेज में बढ़चढ़ कर जनता वोट करेगी लेकिन उम्मीद

के मुताबिक ऐसा नहीं रहा। इस बार तो 2019 के मुकाबले कम मतदान पड़े। ऐसे में समझना जरूरी है कि यह कम वोटिंग का ट्रेंड कहता क्या है?

कम वोटिंग ट्रेंड को लेकर काफी चर्चा है। जानकारों के अनुसार अभी इस वोटिंग से कोई ठोस ट्रेंड निकालना कठिन है। साथ ही इससे ओवर ऑल वोटिंग का ट्रेंड भांपना भी सही नहीं है। हालांकि जिस तरह पहले चरण में अपेक्षाकृत कम वोट पड़े हैं उससे सभी दलों का गणित बिगड़ गया है। कम वोटिंग से किसे लाभ या किसे नुकसान होगा, इसे जानने की कोशिश की जा रही हैं। पहले राउंड में कम वोटिंग के बाद सभी दल अपने बूथ मैनेजमेंट में व्यस्त हो गए। जानकारों के अनुसार नजदीकी मुकाबले में जो राजनीतिक दल अपने-अपने वोटरों को बूथ तक भेजने में सफल रहेंगे, वे अधिक लाभ में रहेंगे। अब तक आए आंकड़े के अनुसार, शहरी क्षेत्रों में वोटिंग कम हुई। खासकर तमिलनाडु के शहरों में। बीजेपी का तर्क है कि उसके वोटर बेहद उत्साह से निकल रहे हैं। विपक्षी दलों का भी ऐसा ही दावा है। इन दावों के बीच इनकी चिंताएं भी

क्या लोकतंत्र की विश्वसनीयता पर लग रहा प्रश्नचिन्ह?

हैं। सामान्य तौर पर बहुत अधिक वोटिंग होने से ऐसा संदेश जाता है कि यह परिवर्तन के लिए उमड़ी भीड़ है जबकि उदासीन वोट से संदेश जाता है कि वोटरों में बदलाव की चाह नहीं है, जिसे सत्ता पक्ष में अपने लिए उम्मीद के रूप में देखता है। हालांकि यह मिथ भी हाल के दौरान कई चुनावों के दौरान टूटा है। 2019 आम चुनाव में भी पहले दो चरणों में वोटिंग के कम होने का ट्रेंड दिखा था लेकिन बाद में इसमें बाकी चरणों में बढ़ोतरी हो गई थी।

कम मार्जिन वाले सीटों पर पड़ेगा असर- 2019 के आम चुनाव में लगभग 75 ऐसी लोकसभा सीटें थीं, जहां बहुत कांटे की टक्कर थी। इन सभी सीटों पर जीत-हार का अंतर 20 हजार से भी कम वोटों का था। कम वोटिंग होने से ऐसी सीटों पर बहुत असर पड़ेगा और परिणाम किसी भी तरफ झुक सकता है। परिणाम इसी बात से तय

अधिकांश दूसरे राज्यों में औसत से कम मतदान

भागीदारी स्तर पर राज्य में अलग-अलग हैं पर पिछली बार की तुलना में ज्यादा अंतर नहीं है, असम में जिन क्षेत्रों में पहले चरण में मतदान हुआ वहाँ औसत 71 फीसदी लोगों ने वोट डाले। यह आकड़ा भी पिछली बार के मतदान से दो फीसदी कम है। गुजरात दूसरे छोर पर है और वहाँ 45 फीसदी ही वोट पड़े जो यहाँ पिछली बार पड़े वोटों से दो फीसदी कम है। पूर्वोत्तर में मेघालय, मिज़ोरम और त्रिपुरा में मतदान में थोड़ी कमी है। दादर और नगर हवेली तथा दमन और दीव में भी वोट कम पड़े पर अंडमान और निकोबार में ज्यादा मतदान हुआ है। बाहरी मणिपुर में उग्रवादी संगठनों की धमकी और बायकाट का प्रभाव नहीं हुआ और लोगों ने पिछली बार से ज्यादा संख्या में मतदान किया। जम्मू-कश्मीर में जिन दो क्षेत्रों में मतदान हुआ है, वहाँ 1999 की तुलना में 13 फीसदी अधिक मतदान हुआ है लेकिन यह लोगों के उत्साह का पैमाना नहीं है। असल में इस बार जम्मू में ही सिर्फ 29 फीसदी ही वोट पड़ा है। बारामूला में 23 फीसदी वोट पड़े लेकिन इसे ख़राब नहीं मानना चाहिए। पिछली बार के आकड़ों के पक्का होने का भरोसा नहीं किया जाता। लक्षद्वीप में 2019 और 2024 के मतदान प्रतिशत में सबसे अधिक अंतर देखा गया। 2019 में लक्षद्वीप में 85.2 प्रतिशत मतदान हुआ जो घटकर 59 प्रतिशत रह गया। वहीं, अरुणाचल प्रदेश में 2019 में वोटिंग प्रतिशत 82.1 प्रतिशत था, 2024 में यह घटकर 67.7 प्रतिशत रह गया है। यहां तक कि उत्तर पूर्वी राज्य नागालैंड में भी इस बार मतदान में गिरावट देखी गई, जबकि 2019 में मतदान प्रतिशत 83 प्रतिशत था, हालांकि इस बार यह 56.6 प्रतिशत रहा। मणिपुर में भी ऐसी ही गिरावट देखने में आई है। राज्य में 2019 में 82.7 प्रतिशत मतदान हुआ था, इस बार राज्य में 69.2 प्रतिशत मतदान हुआ है। बिहार को छोड़कर सभी राज्यों में 50 प्रतिशत से अधिक मतदान हुआ और यह लोकतंत्र के लिए एक अच्छा संकेत है, यह एक संकेत है कि भारतीय बाहर आ रहे हैं और मतदान कर रहे हैं और समझ रहे हैं कि उनका हर वोट मायने रखता है। हालांकि विपक्ष का मानना है कि यह कमी उनके लिए अच्छी नहीं होगी, उनका मानना है कि मतदान प्रतिशत कम होने का मतलब है कि लोग मौजूदा सरकार से असंतुष्ट नहीं हैं और यही कारण है कि वे बड़ी संख्या में अपने अधिकार का प्रयोग करने नहीं आए। पश्चिम बंगाल, केरल और तमिलनाडु जैसे प्रदेशों में ज़्यादा मतदान होता है और वहाँ ज्यादा उतार-चढ़ाव भी नहीं होता, इसलिए काफी कुछ मध्यप्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों पर निर्भर है। हाल के वर्षों में उत्तर प्रदेश में ज्यादा उत्साह से मतदान नहीं हुआ है। हालांकि रणनीति बहुकोणीय और दिलचस्प रही है। राजस्थान और मध्य प्रदेश में इस बार ज्यादा ज़ोरदार मुकाबला नहीं है। दूसरे फेज में यूपी की 8 सीटों पर वोटिंग हुई। इनमें से 5 सीटों का वोटिंग टर्न आउट सामने आया है। उत्तर प्रदेश में कुल 54 प्रतिशत के आसपास वोटिंग हुई। अमरोहा में अभी तक सबसे ज्यादा 62 प्रतिशत वोटिंग हुई है। जबकि 2019 के इलेक्शन में इस सीट पर 71 प्रतिशत वोटिंग हुई थी। मथुरा में पिछले चुनाव में 61 प्रतिशत मतदान हुआ था। लेकिन इस बार अब तक 47 प्रतिशत वोटिंग हुई।

होगा कि किस दल ने अपने वोटर को बूथ तक लाने में अतिरिक्त मेहतन की। यही कारण है कि सभी दलों ने वोटिंग के बाद अपनी रणनीतिक मीटिंग की और ग्राउंड फीडबैक लिया। अब तक का मतदान प्रतिशत 2019 चुनाव के पहले दो चरणों के

मतदान प्रतिशत में गिरावट से क्या सत्ताधारी दल को होता है नुकसान?

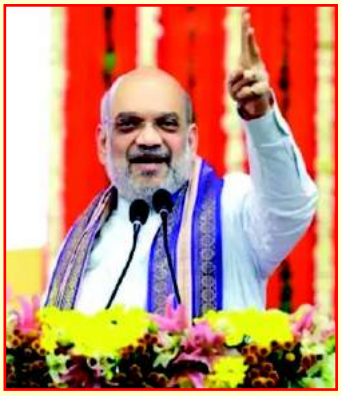

पिछले 12 में से 05 चुनावों में मतदान प्रतिशत में गिरावट देखने को मिले है। जब-जब मतदान प्रतिशत में कमी हुई है 04 बार सरकार बदल गयी है। वहीं एक बार सत्ताधारी दल की वापसी हुई है। 1980 के चुनाव में मतदान प्रतिशत में गिरावट हुई थी और जनता पार्टी की सरकार सत्ता से हट गयी। जनता पार्टी की जगह कांग्रेस की सरकार बन गयी थी। वहीं 1989 में एक बार फिर मत प्रतिशत में गिरावट दर्ज की गयी और कांग्रेस की सरकार चली गयी थी। विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व में केंद्र में सरकार बनी थी। 1991 में एक बार फिर मतदान में गिरावट हुई और केंद्र में कांग्रेस की वापसी हो गयी। 1999 में मतदान में गिरावट हुई लेकिन सत्ता में परिवर्तन नहीं हुआ। वहीं 2004 में एक बार फिर मतदान में गिरावट का फायदा विपक्षी दलों को मिला था।

मुकाबले कम रहा है। इसलिए, देश के चुनावी पंडितों को तरह-तरह के पासे फेंकने का मौका मिल गया है।

इस साल मतदाताओं को मतदान के लिए प्रेरित करने का बहुत ज्यादा प्रयास किया जा रहा है। क्या मतदान करने के लिए लगातार दबाव डालना निराशाजनक है? क्या मतदान करने के आपके 'कर्तव्य' को लेकर ज्यादा ही ढिंढोरा पीटा जा रहा है? क्या घटिया किस्म का राजनीतिक विमर्श वोटिंग में बाधा बन सकता है? क्या 44 दिनों तक चलने वाले चुनावों में वोटिंग प्रक्रिया थकाउ हो गई है? क्या कम संख्या में मतदाताओं के घर से निकलने में गर्मी की भी भूमिका है? क्या रिकॉर्ड समय में दल बदलने वाले सिद्धांतहीन राजनेताओं के कारण वोटरों का उत्साह कम होता है? क्या मतदान की प्रक्रिया में भरोसा डगमगा रहा है? क्या टीवी पर चल रहे तमाशों वोटर दुखी हो रहे हैं? क्या उम्मीदवार अच्छे नहीं हैं? क्या ऐसे बहुत ज्यादा अपराधी और बदमाश हैं, जिनका प्रभाव इतना है कि वे जेल से बाहर रह सकते हैं?

क्या मतदान करने के लिए लगातार दबाव डालना निराशाजनक है? क्या मतदान करने के आपके कर्तव्य को लेकर ज्यादा ही ढिंढोरा पीटा जा रहा है? क्या घटिया किस्म का राजनीतिक विमर्श वोटिंग में बाधा बन सकता है?

सच में वोट कम हो रहा है?- मतदाता वोट क्यों देते हैं? इसके पीछे कई कारण हैं। हाल ही में जाति, पंथ और धर्म के कारण भी वोटिंग हुई है। अगर 2014 को 'विकास' के आह्वान के रूप में देखा गया था, तो 2019 का मतदान मतदाताओं की प्रेरित लामबंदी थी। इस साल अब तक, राजनीतिक दल और चुनाव आयोग अधिक से अधिक लोगों को मतदान केंद्रों तक लाने के लिए

कम मतदान मतलब बीजेपी को नुकसान

वैसे कहा जा सकता है कि कम मतदान होने पर नुकसान बीजेपी को ही होने वाला है। क्योंकि जितने ज्यादा वोट डलेंगे वह बीजेपी के ही डलेंगे। यही कारण है कि मतदान प्रतिशत बढ़ाने पर भाजपा ही ज्यादा जोर दे रही है। कांग्रेस अपने वोटबैंक को लेकर निश्चिंत है। उसे पता है कि उसका समर्थक वोटर तो मतदान कर रहा है। निश्चित ही कम मतदान से नुकसान बीजेपी को ही होने वाला है। कम मतदान से प्रधानमंत्री, गृहमंत्री समेत प्रदेश के मुख्यमंत्री तक सब घबराये हुए हैं। और कोशिश कर रहे हैं कि मतदान के प्रतिशत को बढ़ाया जाये। कम मतदान होने का मतलब यह भी हो सकता है कि देश का मतदाता बीजेपी से नाराज है। और वह वोट ही नहीं करना चाहता है।

कड़ी मेहनत कर रहे हैं। मतदाताओं की खेमेबंदी पहले से कहीं अधिक मजबूत हुई है। कई लोग राजनीतिक रूप से बहुत तगड़े दिखते हैं। पार्टियों और विरोधों के लिए समर्थन तेजी से जारी है। फिर भी ऐसा लगता है कि कम लोग मतदान कर रहे हैं।

लेकिन क्या यह सच है भी?- मतदाताओं का आकार बढ़ा है। 2019 में 89.6 करोड़ मतदाता थे, अब बढ़कर 96.88 करोड़ हो गए। यानी इस वर्ष 7.28 करोड़ मतदाता जुड़े हैं। इससे सवाल उठता है कि क्या 60 प्रतिशत के आसपास मतदान को वास्तव में 'कम' कहा जा सकता है? शायद यही एकमात्र सवाल है जो हमें इस समय पूछने की जरूरत है। इस सवाल का जवाब ढूंढने जाएं तो दो आंकड़े सामने आते हैं- पहला इस बार 8.12 प्रतिशत वोटर ज्यादा है और वोट प्रतिशत 6 प्रतिशत के आसपास कम हुआ है। इससे साफ है कि देखें तो 2019 के लिहाज से इस बार के चुनाव में वोट डालने वालों की संख्या ज्यादा है।

पहले फेज की वो सीटें जहां हुए सबसे कम मतदान- पहले चरण में जिन 10 सीटों पर सबसे कम मतदान हुए वो हैं नवादा, गया, जमुई, औरंगाबाद, अल्मोड़ा, गढ़वाल, टिहरी गढ़वाल, भरतपुर, झुंझुनू और करौली धौलपुर ये वो सीटें हैं जहां पिछले 02 चुनाव से मतदान प्रतिशत में बढ़ोतरी हुई थी और बीजेपी को शानदार जीत मिली थी। अधिकतर जगहों पर बीजेपी को 2014 की तुलना में 2019 बड़ी जीत मिली थी। 2009 के चुनाव में इन सीटों पर कम मतदान हुए थे और कई सीटों पर गैर एनडीए दलों को जीत मिली थी। पहले चरण में जिन सीटों पर कम मतदान देखने को मिले थे उनमें कई सीटें सुरक्षित सीटें थी। बिहार की जमुई और गया सीट, राजस्थान की करौली धौलपुर और भरतपुर सीट सुरक्षित सीटें थी। ये सीटें अनुसूचित जाति के उम्मीदवारों के लिए सुरक्षित हैं। दूसरे

चरण में भी जिन 10 सीटों मथुरा, रीवा, गाजियाबाद, भागलपुर, बेंगलुरु साउथ, गौतम बुद्ध नगर, बेंगलुरु सेंट्रल, बेंगलुरु नार्थ, बांका और बुलंदशहर में कम मतदान हुए हैं उन सभी सीटों पर पिछले चुनाव में एनडीए को जीत मिली थी। इनमें से कई ऐसी सीटें रही हैं जहां शहरी वोटर्स की संख्या काफी अधिक है। इन सीटों पर बीजेपी या एनडीए उम्मीदवार बड़ी अंतर से चुनाव जीत चुके हैं। बिहार के भागलपुर सीट पर 2014 के चुनाव में बहुत कम अंतर से राजद को जीत मिली थी लेकिन 2019 में वोट प्रतिशत में बढ़ोतरी के बाद 2019 में जदयू को इस सीट पर बड़ी जीत मिली थी।

कम मतदान प्रतिशत से किसे फायदा किसे नुकसान?- वोटिंग प्रतिशत में बढ़ोतरी और गिरावट को देखकर सीधे तौर पर चुनाव परिणाम को लेकर कुछ भी कहना जल्दीबाजी के तौर पर देखा जाता है। हालांकि किन सीटों पर वोट प्रतिशत में गिरावट हुई है इसे लेकर एक तस्वीर तैयार की जाती है। जिन पहले और दूसरे चरण में जिन सीटों में चुनाव हुए हैं उनमें कुछ ऐसी भी सीटें हैं जहां 30 से 50 प्रतिशत तक मुस्लिम वोटर्स रहे हैं। हालांकि इन सीटों पर वोटिंग परसेंट में गिरावट नहीं हुई है। मतदान प्रतिशत में गिरावट सुरक्षित और शहरी सीटों पर अधिक देखने को मिले हैं।

मतदान का चुनावी इतिहास

भारत में लोकतांत्रिक चुनावों में पहले 15 वर्षों में मतदान 50 फीसदी से कम के आकड़े से बढ़कर चौथे आम चुनाव 1967 में 60 फीसदी के ऊपर में हुआ, पिछले संसदीय चुनाव इसी औसत के आसपास थे। इनमें से 1984, 1989 और 1998 में औसत से कुछ उपर मतदान हुआ तो 1991 और 1996 में औसत से कुछ कम, अगर पिछले चरण में चुनावों जैसा ही मतदान हुआ तो औसत 1996 के आस-पास आ जाएगा। अगर उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और राजस्थान जैसे प्रदेशों में मतदान में ज्यादा कमी आई तब संभव है कि हाल के वर्षों का रिकार्ड टूटे और हम इधर सबसे कम मतदान देखें।

2019 और 2014 से तुलनात्मक आंकलन

एक धारणा और है कि जिस क्षेत्र में मुस्लिम समुदाय की संख्या अधिक होती है, वहां के बूथों पर वोट ज्यादा बरसता है और दूसरे समुदाय की अधिकता वाले बूथों के वोटर मताधिकार के प्रति लापरवाह या उदासीन रहते हैं। इस बार यह धारणा भी लगभग निर्मूल दिख रहा है। पहले चरण का मतदान बता रहा है कि सभी सीटों पर वोटरों ने बूथों पर जाने से परहेज किया। वहां भी जहां पिछले दो चुनावों से 70 प्रतिशत से ज्यादा वोट पड़ रहे थे, इस बार पांच से दस प्रतिशत तक कम वोट पड़े हैं। 2019 और 2014 से तुलना करें तो यूपी में पहले चरण की आठ सीटों में से पांच पर कम वोट पड़े। सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, कैराना, बिजनौर एवं नगीना के वोटरों ने उत्साह नहीं दिखाया। ऐसा क्यों हुआ? मतदान में गिरावट से पार्टियों की हार-जीत पर भी असर पड़ सकता है क्या?

कम या ज्यादा मतदान से हार-जीत का आंकलन नहीं लगाया जा सकता

राजनीतिक विश्लेषक अभय कुमार इससे सहमत नहीं हैं। कहते हैं कि आजादी के बाद कई चुनावों में वोट प्रतिशत में उतार-चढ़ाव के बावजूद कांग्रेस ही सत्ता में बनी रही। कोई ट्रेंड नहीं दिखा। वर्ष 2009 के चुनाव में 58.21 प्रतिशत वोट पड़े थे, जो 2014 में करीब आठ प्रतिशत से ज्यादा बढ़कर 66.44 प्रतिशत हो गया। इसे परिवर्तन की लहर बताया गया, किंतु 2019 के चुनाव में बढ़कर 67.40 प्रतिशत हो गया। फिर भी सरकार नहीं बदली। पहले से ज्यादा सीटों से मोदी सरकार की वापसी हुई। इसी तरह 1999 की तुलना में 2004 में करीब दो प्रतिशत कम वोट पड़े। फिर भी सरकार बदल गई। जाहिर है कि कम या ज्यादा मतदान से हार-जीत का आकलन नहीं किया जा सकता।

राजनीतिक दल भी अपने पक्ष में वोट डलवाने के लिए पूरी कोशिश करते हैं, क्योंकि वोटों की संख्या ही सियासी रण में विजेता का फैसला करती है। लेकिन इस बार वोटर ही बहुत ज्यादा उत्साहित नहीं दिख रहा है, इसके पीछे जो कारण गिनाए जा रहे हैं, उन्हें राजनीतिक मनोविज्ञानी, समाजशास्त्री और चुनावी रणनीतिकार भी समझने की कोशिश कर रहे हैं। हर चुनाव में मतदान प्रतिशत की घट-बढ़ नई बात नहीं है और वोटों की यह कमी बेशी कभी सत्ता की वापसी तो कभी बेदखली के रूप में सामने आती है। लोकसभा चुनाव के लगातार दूसरे चरण में भी मतदान प्रतिशत घटने से राजनीतिक दलों का आत्मविश्वास डगमगाने लगा है। पार्टियों को अब ऐसे क्लिक करने वाले मुद्दे की तलाश है, जो वोटर को पोलिंग बूथ तक खींचकर ला सके। कम होते वोटिंग के साथ-साथ मुद्दों की शिफ्टिंग भी साफतौर पर परिलक्षित होने लगी है। विकास और कुछ बड़ा करने के दावे अब

हाशिए हैं। हकीकत में राजनेता अब मतदाता को रिझाने की जगह उसे डराने के खतरनाक खेल पर उतर आए हैं। कहीं मतदाता को आरक्षण खत्म करने और संविधान बदल डालने के नाम पर डराया जा रहा है तो कहीं महिला मतदाता से सम्पत्ति के समान वितरण के नाम पर महिला मतदाताओं से मंगल-सूत्र तक छीन लेने और हिंदुओं की आय को मुसलमानों में बांट देने की बात कही जा रही है। इसकी व्यावहारिकता और सच्चाई पर कोई नहीं जा रहा है। चुनाव के कुरूक्षेत्र में भिड़ी दोनो राजनीतिक गठबंधनों की सेनाएं अब अपना-अपना वोट बैंक किसी भी कीमत पर बचाने में लगी हैं। लेकिन मतदाता राजनेताओं और राजनीतिक दलों की इस ड्रामेबाजी से मन ही मन खिन्न नजर आता है, शायद यही कारण है कि प्रलोभनों की बारिश और भयादोहन की पराकाष्ठा के बीच वह घर बैठना ही ज्यादा बेहतर समझ रहा है। भाव यह है कि किसी को भी वोट देने से फायदा क्या? हमाम में सभी निर्लज्ज और झूठे हैं। यूं हर चुनाव में मतदान प्रतिशत की घट-बढ़ नई बात नहीं है और वोटों की यह

मतदाताओं से मंगल-सूत्र तक छीन लेने और हिंदुओं की आय को मुसलमानों में बांट देने की बात कही जा रही है। इसकी व्यावहारिकता और सच्चाई पर कोई नहीं जा रहा है।

कमीबेशी कभी सत्ता की वापसी तो कभी बेदखली के रूप में सामने आती है। वोट प्रतिशत के घटने बढ़ने का हार जीत से कोई सीधा रिश्ता नहीं है। यहां उंट किसी भी करवट बैठ सकता है। हालांकि चुनाव आयोग भी लोकतंत्र के इस महापर्व में मतदाता की ज्यादा से ज्यादा भागीदारी को लेकर कई तरह से कोशिश करता है ताकि चुनाव नतीजों की साख अधिकाधिक बढ़े। राजनीतिक दल भी अपने पक्ष में वोट डलवाने के लिए पूरी कोशिश करते हैं, क्योंकि वोटों की संख्या ही सियासी रण में विजेता का फैसला करती है। लेकिन इस बार वोटर ही बहुत ज्यादा उत्साहित नहीं दिख रहा है, इसके पीछे जो कारण गिनाए जा रहे हैं, उन्हें राजनीतिक मनोविज्ञानी, समाजशास्त्री और चुनावी रणनीतिकार भी समझने की कोशिश कर रहे हैं।

इधर कुछ तर्क सामने भी आए हैं जिनमें गर्मी ज्यादा होने, एक वर्ग द्वारा मतदान दिवस की छुट्टी को पिकनिक डे के रूप में मनाने, भाजपा शासित ज्यादातर राज्यों में चुनावी माहौल एकतरफा होने का नरेटिव बनने, नई सरकार बनाने या बदलने के प्रति

मध्यप्रदेश में मतदान प्रतिशत का गणित

मध्यप्रदेश में पिछले दो लोकसभा चुनाव में भाजपा बड़े अंतर से जीती पर उसे कुछ विधानसभा क्षेत्रों में नुकसान उठना पड़ा। 2014 के लोकसभा चुनाव में 39 तो 2019 के चुनाव में भाजपा को 22 सीटों पर नुकसान हुआ था। इन सीटों पर पार्टी को कम मत मिले थे। इस बार पार्टी की रणनीति प्रत्येक मतदान केंद्र पर 370 वोट अपने पक्ष में बढ़ाकर सभी विधानसभा सीटों जीत प्राप्त करने की है।

सुरक्षित सीटों पर अधिक जोर दिया जा रहा है– इसके लिए अनुसूचित जाति एवं जनजाति वर्ग के लिए सुरक्षित सीटों पर अधिक जोर दिया जा रहा है। यद्यपि, पहले और दूसरे चरण में हुए कम मतदान ने उसकी चिंता बढ़ा दी है, इसलिए समीक्षा कर पन्ना, अर्द्ध पन्ना प्रभारियों के साथ सभी मोर्चा संगठनों को बूथवार सक्रिय किया गया है। प्रदेश में लोकसभा चुनाव के पहले चरण में 67.75 प्रतिशत तो दूसरे चरण के

मतदाता के अप्रतिबद्ध होने, भाजपा नेताओं द्वारा चुनाव के पहले ही 400 पार का नारा देकर चुनाव नतीजों की प्री सेटिंग करने से भाजपा के वोटर द्वारा चैन की नींद सोने, विपक्ष के एकजुट होने के बाद भी नेतृत्वविहीन होने तथा सत्ता परिवर्तन के

58.59 प्रतिशत मतदान रहा है, जो पार्टी की उम्मीद से काफी कम है।

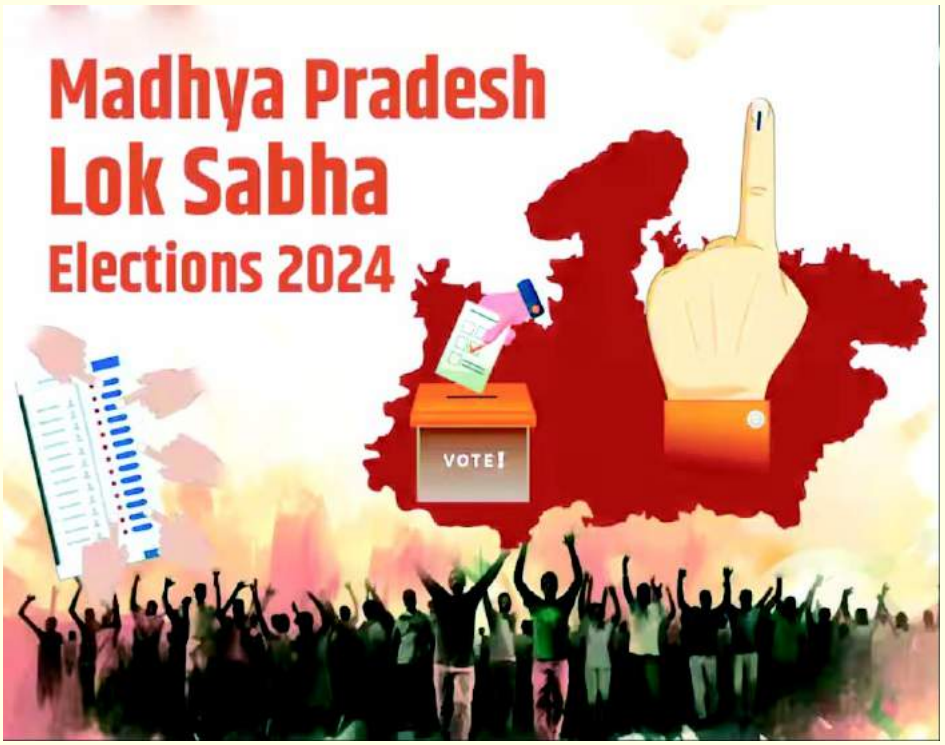

भाजपा ने बूथ प्रभारियों को किया सक्रिय– ऐसे में अब भाजपा ने तीसरे और चौथे चरण में होने वाले मतदान को लेकर बूथवार समीक्षा की और अधिक से अधिक मतदान कराने के लिए बूथ प्रभारियों को और अधिक सक्रिय किया है। पार्टी का लक्ष्य सभी 29 सीटों पर कमल का फूल खिलाकर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की झोली में डालना है। इसके लिए प्रत्येक बूथ पर 370 वोट बढ़ाने का लक्ष्य भी रखा गया है।

12 में से 06 मंत्री डेंजर जोन में नजर आए– केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह ने लोकसभा चुनाव के दूसरे चरण की वोटिंग के पहले भोपाल में एक बैठक ली। इसमें मध्यप्रदेश के बीजेपी नेता शामिल हुए। इस बैठक में उन्होंने कहा- जिन मंत्रियों के इलाके में मतदान प्रतिशत कम होगा, उनका मंत्री पद चला जाएगा। बदले में उन विधायकों को मंत्री बनाया जाएगा, जिनके क्षेत्र में मतदान प्रतिशत बढ़ेगा। हालांकि, अमित शाह ने ये नहीं बताया कि कितने फीसदी कम वोटिंग पर मंत्रियों का पद जा सकता है। अमित शाह की ही इस चेतावनी को आधार मान कर दोनों चरणों के चुनाव की वोटिंग का एनालिसिस किया तो 12 में से 6 मंत्री डेंजर जोन में नजर आए। इनकी विधानसभा सीटों पर हुआ मतदान, लोकसभा क्षेत्र में हुई औसत वोटिंग से भी कम है।

कहीं खोखला न साबित हो जाए अमित शाह का दावा– केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह ने दावा किया कि लोकसभा चुनाव के शुरु आती 2 चरणों के चुनाव में ही बीजेपी 100 का आंकड़ा पार कर चुकी है। उन्होंने पूरा भरोसा जताया कि इस बार '400 पार' का लक्ष्य पार कर लिया जाएगा। उन्होंने आरोप लगाया कि कांग्रेस ये झूठ फैला रही है कि बीजेपी संविधान और आरक्षण को खत्म कर देगी। शाह ने कहा कि दो चरणों के चुनाव के बाद बीजेपी और उसके सहयोगी 100 सीटों के आंकड़े को पार चुके हैं। जनता के आशीर्वाद और समर्थन की बदौलत बीजेपी 400 लोकसभा सीटों के लक्ष्य की तरफ बढ़ रही है।

लिए ऐसा कोई आंतरिक बल या प्रेरणा का अभाव जो मतदाता को पोलिंग बूथ तक जाने के लिए विवश करें आदि शामिल हैं। दरअसल इस लोकसभा चुनाव के पहले राजनेताओं ने जिस तरह बयानबाजी की थी, उससे लग रहा था कि इस बार मतदान के

दौरान कोई सुनामी आने वाली है, जो या तो मोदी सरकार के पक्ष में होगी या फिर उसके विरोध में। लेकिन मतदान के जो आंकड़े आ रहे हैं, उससे सुनामी तो क्या बरसाती नदी की मौसमी बाढ़ का भी अहसास नहीं हो रहा। हालत यह है कि 2019 के लोकसभा चुनाव की तुलना में पहले चरण में 102 सीटों पर हुए मतदान में औसतन 4.4 फीसदी की गिरावट आई तो दूसरे चरण में यह कमी और बढ़कर 07 फीसदी तक जा पहुंची। बावजूद इसके कि मप्र में केन्द्रीय गृह मंत्री अमित शाह ने राज्य के मंत्रियों को साफ चेतावनी दे दी थी कि वोटिंग घटा तो उनकी कुर्सी भी जाएगी। इसका भी वोटरों पर कोई असर नहीं हुआ, अब मप्र में किस किस मंत्री की कुर्सी जाएगी, लोग इस पर चर्चा में ज्यादा रस ले रहे हैं बजाए इसके कि वोटिंग कैसे बढ़े। हालांकि मतदान के पांच चरण अभी बाकी हैं, लेकिन अगर वोटिंग ट्रेंड नहीं बदला तो सियासी दलों के चुनावी गणित गड़बड़ा सकते हैं। मतदाता जो भी सोच रहा हो, राजनीतिक दलों ने इस उदासीनता को तोड़ने के लिए वोटर को रिझाने, मनाने की बजाए डराने के नुस्खे पर काम शुरू कर दिया है। इसकी शुरूआत पहले विपक्ष की तरफ से हुई। कहा गया कि भाजपा और एनडीए को 400 पार का बहुमत इसलिए चाहिए कि देश के संविधान को बदला जा सके। हालांकि कोई यह बताने की स्थिति में नहीं है कि संविधान बदलने का निश्चित अर्थ और विषयवस्तु क्या है। संविधान में संशोधन का प्रावधान पहले ही से है। संविधान के मूल ढांचे में बदलाव नहीं किया जा सकता, यह कोर्ट का फैसला है। अगर भाजपा इसे बदलना भी चाहे तो क्या बदलेगी? दबी जबान से यह बात फैलाई जा रही है कि संविधान नए सिरे से लिखा जाने वाला है, जो मनुस्मृति पर आधारित होगा। लेकिन जब यह देश ईवीएम से बैलेट पेपर पर वापस जाने के लिए तैयार नहीं है तब संविधान को ढाई हजार साल पुरानी मनुस्मृति के आधार पर पुनर्लेखन की बात महज सियासी शोशेबाजी है। दूसरा डर है आरक्षण खत्म करने का। भाजपा भारी बहुमत में आएगी तो आरक्षण का खत्म होगा। खासकर दलितों और आदिवासियों का। यह भी देश के लोकतांत्रिक तकाजों और विवशताओं के चलते असंभव है। इसके पहले विपक्षी दल अल्पसंख्यकों और खासकर मुसलमानों को सीएए और एनआरसी पर डराते आ ही रहे हैं। जबकि सीएए तो नागरिकता छीनने का नहीं, देने का कानून है। मकसद यही कि किसी तरह वोटों की गोलबंदी मजबूती से हो।

दूसरी तरफ विकास और देश को विश्वगुरू बनाने के दावे अब आर्थिक न्याय-अन्याय के बीहड़ों में छटपटाते नजर आ रहे हैं। इसकी शुरूआत तो प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने ही की। उन्होंने कांग्रेस घोषणा पत्र में आर्थिक समानता के वादे को उलटाते हुए मतदाताओं और खासकर हिंदू मतदाताओं को डराया कि कांग्रेस सभी का

आर्थिक सर्वेक्षण कराके तमाम हिंदुओं की सम्पत्ति हड़प कर मुसलमानों में बांट देगी। क्या यह संभव है? जब 600 साल के मुस्लिम शासन में यह मुमकिन न हो सका तो कांग्रेस जो खुद ही अपने अस्तित्व के लिए जूझ रही है, 80 फीसदी हिंदुओं की सम्पत्ति छीनकर मुसलमानों को बांटने का क्या खाकर दुस्साहस करेगी और क्या हिंदू ऐसा होने देंगे? प्रधानमंत्री ने इस सम्पत्ति के बंटवारे में मंगलसूत्र का इमोशनल धागा भी पिरोया कि कांग्रेस पावर में आई तो सधवाओं के मंगलसूत्र भी छिन जाएंगे। हिंदू विवाहित महिलाओं द्वारा सुहाग के प्रतीक मंगल सूत्र पहनने की प्रथा देश में मुख्य रूप से महाराष्ट्र और कर्नाटक में है। गुजरात में भी हो सकती है, लेकिन देश के बाकी हिस्सों में विवाहित महिलाएं आमतौर सोने की चेन, जिसमें पेंडेंट लटका होता है ही पहनती हैं, इसलिए मंगलसूत्र बचाने की अपील कितनी कारगर होगी, कहना मुश्किल है। इसी तरह मामला विरासत कर का भी है।

16.63 करोड़ से ज्यादा मतदाताओं ने वोट डाले

दुनिया के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश में बीते 19 अप्रैल को लोकतंत्र के सबसे बड़े महापर्व की शुरु आत हुई। इस दिन पहले चरण का मतदान हुआ, जिसमें 66 फीसदी वोटिंग हुई है। 21 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेश जिनमें अरु णाचल प्रदेश, असम, बिहार, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, राजस्थान, सिक्किम, तमिलनाडु, त्रिपुरा, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, पश्चिम बंगाल, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, जम्मू और कश्मीर, लक्षद्वीप और पुदुचेरी की लोकसभा सीटें शामिल रहीं। इन सीटों पर बने 2 लाख मतदान केंद्रों पर 16.63 करोड़ से ज्यादा मतदाताओं ने वोट डाले हैं।

चुनाव आयोग की कोशिश, अधिक हो मतदान

भाजपा के लिए राजस्थान के अलवर जैसे कुछ क्षेत्र जहां मतदान प्रतिशत कम हुआ है। मतदान प्रतिशत इसलिए कम हुआ है क्योंकि अल्पसंख्यक बहुल क्षेत्रों में गिरावट देखी गई है। हालांकि चुनाव आयोग मतदान प्रतिशत बढ़ाने के तरीकों पर काम कर रहा है। चुनाव आयोग ने लोगों से बाहर निकलने और मतदान करने के लिए कह रहा है। आयोग हर चरण से पहले लोगों को मतदान करने के लिए प्रेरित करने वाली अपनी अपील में और तेजी लाएगा। आयोग पिछले लोकसभा चुनाव का रिकार्ड तोड़ने की प्लानिंग में है। हालांकि इस चुनावी मौसम में कुछ चिंताजनक बातें भी सामने आई हैं। बिहार एकमात्र राज्य है जहां इस चुनाव में 50 प्रतिशत से अधिक मतदान हुआ है।

सरकार रूपी रोटी को उलटते-पलटते रहें

रघु ठाकुर

2024 के लोकसभा चुनाव देश के लिये विशेष महत्व और चिंता के चुनाव है। जहां एक तरफ देश का एक बौद्धिक हिस्सा चुनाव के बाद की संभावनाओं को लेकर आशंका व्यक्तकर रहा है तो वहीं दूसरी ओर देश के ग्रामीण और आम आदमी प्रधानमंत्री के प्रति उत्साह से सराबोर है। विशेषतः राम मंदिर के निर्माण, फिर प्राण प्रतिष्ठा, फि र अबूधावी में स्वामी नारायण मंदिर का शिलान्यास और अब बनारस की ज्ञानव्यापी और मथुरा के श्रीकृष्ण मंदिर को लेकर एक जुनूनी वातावरण जैसा है। देश के बौद्धिक जगत के एक बड़े हिस्से में जो आशंकायें हैं वह हो सकता है कुछ कि राजनैतिक प्रतिद्वंदिता की वजह से भी हों या सत्ता हासिल करने के लिये पिछले कुछ समय से जिस प्रकार के आरोप-प्रत्यारोप चुनावी बहस का आधार बनाये जाते हैं उन्हें देखते हुए इन आशंकाओं के पूर्वाग्रह होने के आरोप को भी एकदम नकारा नहीं जा सकता। परंतु कुछ समय से और विशेषतरू मप्र, छग और राजस्थान के विधानसभा चुनाव में भाजपा की कार्य पद्धति में जो परिवर्तन दिख रहे हैं वे कुछ आशंकाओं को सिद्ध तो करते हैं। वैसे तो पिछले लगभग आजादी के बाद से ही राज्यों के मुख्यमंत्रियों के चयन में देश के सत्ताधारी दल के केंद्रीय नेतृत्व और प्रधानमंत्री का निर्णायक हस्तक्षेप रहा है। परंतु पिछले 55 वर्षों से यानि 1971 में श्रीमती इंदिरा गांधी के बहुमत से जीत जाने के बाद हाईकमान के नाम से मुख्यमंत्री नामजदगी की परंपरा शुरू हुई और यह बीमारी यहां तक पहुंची कि चुनाव के बाद पार्टियों के विधायक दल चाहे मुख्यमंत्री के पद का चुनाव हो या नेता प्रतिपक्ष का चयन हो, चयन करने के लिये स्वतंत्र नहीं होते तथा एक लाइन का प्रस्ताव पारित करते हैं कि हाईकमान को अधिकार दिया जाता है। यह एक प्रकार से दलों में लोकतांत्रिक प्रणाली का समापन और चरम व्यक्तिवाद और केंद्रीयकरण का उदभव था। यह चलन कांग्रेस के अलावा क्षेत्रीय पार्टियों में भी रहा क्योंकि क्षेत्रीय पार्टियों के राज्य प्रमुख जो होते हैं वे स्वयंभू सर्वेसर्वा होते हैं।

हालांकि भाजपा में यह चलन एकदम उस रूप में शुरू नहीं हुआ था जिस रूप में कांग्रेस में आया था। और वहाँ एक स्तर पर विधायकों की राय को भी जाना जाता था, जो संघ के लोग संगठन मंत्री होते थे वे भी अघोषित रायसुमारी विधायकों में करते थे

और इन सब सूचनाओं के आधार पर केंद्रीय नेतृत्व मुख्यमंत्री के पद का चयन करता था। परंतु इन तीन राज्यों के चुनाव में अप्रत्याशित और विशाल बहुमत की जीत ने भाजपा के केंद्रीय नेतृत्व और विशेषतः प्रधानमंत्री को एक छत्र शक्तिशाली बना दिया है। तथा केंद्रीयकरण का चरम रूप देखने को मिल रहा है। इन तीनों राज्यों में मुख्यमंत्रियों की नामजदगियाँ बगैर किसी रायशुमारी के सीधे केंद्रीय नेतृत्व ने की है और लोकतांत्रिक प्रक्रिया को दिखाने का प्रयास भी नहीं किया। विधायक दलों की बैठक में जो केंद्रीय पर्यवेक्षक भेजे गये उन्होंने विधायकों को एक पर्ची दिखाकर बता दिया कि यह केंद्र का निर्णय है और विधायकों ने बिना चू-चपड़ के पर्ची के आदेश को शिरोधार्य किया। पर्ची से मुख्यमंत्री के जन्म की यह नई परिपाटी जो भाजपा में शुरू हुई है यह लोकतांत्रिक तो नहीं ही है इसके साथ ही एक खतरनाक केंद्रीयकरण की भी शुरुआत है।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सर संचालक और उनकी टीम की क्या भूमिका है मैं नहीं जानता, परंतु इसके पहले तक विधायक दलों के चुनाव में जो भूमिका संगठन मंत्रियों के माध्यम से संघ की सुनने या जानकारी में आती थी वह इस बार नहीं लग रही है। हालांकि संघ का शिक्षण व संस्कार भी एक अंधानुकरण का है, याने जिस प्रकार एक गड़रिया समूचे भेड़ों के समूह को हाँकता है और वे उसका आदेश मानकर चलती हैं वही अनुशासन की परिपाटी संघ की रही है। एक राजनैतिक दल के रूप में जनसंघ व भाजपा इस परिपाटी से अभी तक कम से कम दिखावे में मुक्त थी परंतु अब वह दिखावे का हिस्सा भी भाजपा ने छोड़ दिया। हालांकि इसका एक अच्छा भी परिणाम हुआ है कि लंबे समय तक मुख्यमंत्रियों के पदों पर बैठे रहे जो अपना गुट या समर्थकों अथवा कृपा वालों का गुट बनाकर स्थाई जैसे हो गये थे, उनके हाथ से सत्ता छिन गई। निरंतर और स्थाई सत्ता, जड़ता और तानाशाही पैदा करती है। इसलिये सत्ताधारी राजनैतिक दलों में भी परिवर्तन होना चाहिए। मेरी राय में तो हर 5 सालों में नेतृत्व में सत्ता के व संगठन के दोनों में परिवर्तन होना चाहिए। दलों के सत्ता और संगठन के नेतृत्व में परिवर्तन होते रहने से नया नेतृत्व उभरेगा तथा परिवारवाद भी कम होगा। यह लोकतंत्र के लिये भी शुभ है और नये नेतृत्व के लिये उभरने के लिए आवश्यक है। जिस प्रकार पुराना वृक्ष जिसकी जड़ें मजबूत हो जाती हैं, वह सारा रस खींच लेता है और अपने नीचे आस-पास किसी नये पौधे को नहीं पनपने देता वही स्थिति राजनीति की भी होती है।

एक जो दूसरा चिंताजनक पहलू है वह भी विचारणीय है। इन विधानसभा के चुनाव में और चुनाव के बाद पार्टी और सरकार के कार्यक्रम के नाम पर एक नया जुमला शुरू हुआ है, वह है मोदी गारंटी। विधानसभा चुनाव में स्वतः प्रधानमंत्री ने मोदी गारंटी का सभाओं में उल्लेख किया। यह कहते हुये कि

मोदी गारंटी मतलब उसका क्रियान्वयन होना निश्चित है। इस कथन का एक अर्थ यह हुआ कि जो वायदे सूबाई सरकार के मुखिया कर रहे थे उनके क्रियान्वयन की गारंटी नहीं थी बस केवल प्रधानमंत्री जी के वायदे के क्रियान्वयन की गारंटी है तथा विधानसभा चुनाव की जीत के बाद भी यही कहा गया कि जीत का कारण केवल मोदी गारंटी है। याने देश की जनता का विश्वास एक मात्र केवल मोदी जी पर ही है और अब भाजपा शासित सभी राज्यों पर हर विज्ञापन में सिर्फ दो ही चित्र दिखते हैं उपर प्रधानमंत्री

का, नीचे मुख्यमंत्री का।

इतना ही नहीं राज्यों में हो रहे छोटे बड़े हर काम का लोकार्पण, विमोचन, शिलान्यास और शुरु आत प्रधानमंत्री जी या तो सशरीर उपस्थित होकर या फि र वर्चुअली याने वीडियो कांफ्रेंस से कर रहे हैं और उनके हर कार्यक्रम और भाषण को राज्यों में मंत्रियों, मुख्यमंत्री, सांसदों, विधायकों और पदाधिकारियों को सुनना और देखना अपरिहार्य है। प्रधानमंत्री का कार्यक्रम कहने को सरकारी होता है, खर्च और व्यवस्था पूर्णतः सरकारी होती है परंतु वह पूर्णरूपेण दलीय कार्यक्रम होता है। प्रधानमंत्री जी के कार्यक्रम के नाम पर इन आयोजनों में सभी बड़े-छोटे नौकरशाह और कर्मचारी भी शामिल होते हैं यह एक प्रकार से नौकरशाही का दलीयकरण है और दलों का नौकरशाहीकरण है।

भारतीय संविधान ने देश के प्रशासन तंत्र को याने नौकरशाही को दलीय राजनीति से मुक्त रखा है। हमारे देश में इन्डपेंडेंट ब्यूरोक्रेसी है। कमिटेड ब्यूरोक्रेसी नहीं है। दुनिया में कई ऐसे देश हैं जहां कमिटेड याने प्रतिबद्ध नौकरशाही है। जैसे अमेरिका में यह परंपरा है कि राष्ट्रपति के चुनाव के बाद पिछले राष्ट्रपति के विश्वसनीय उच्च नौकरशाह बदल जाते हैं और नव नियुक्त राष्ट्रपति अपने पक्ष के नौकरशाहों को लाता है। कम्युनिष्ट देशों में तो दलीय तंत्र ही सत्ता तंत्र होता है। वहां दल के संगठन का निर्वाचन होता है और वही जनमत का निर्णय मान लिया जाता है। यह साम्यवादी तानाशाही होती है परंतु भारत और यूरोप के लोकतांत्रिक देशों में अभी तक यह चलन नहीं था। भारत की ब्यूरोक्रेसी को शायद पहले चरण में कमिटेड ब्यूरोक्रेसी बनने के लिये मानसिक रूप से तैयार किया जा रहा है। प्रधानमंत्री जी संसद से लेकर सड़क तक और अब उनकी पार्टी भी मोदी इस बार चार सौ पार का नारा लगा रही है। एक राजनैतिक दल के रूप में अपना लक्ष्य तय करने का अधिकार सभी दलों को होता है और उनको भी है परंतु लगातार चार सौ की सख्या के उल्लेख के पीछे कुछ अन्य मनोवैज्ञानिक संकेत भी हो सकते हैं जैसे भारतीय संविधान को बदलने के लिये और नया एक धर्म के देश का संविधान लाने के लिये, न्यायपालिका को सत्ता परक बनाने व उसकी स्वतंत्रता समाप्त करने के लिये संसद का तीन चौथाई सदस्य संख्या घोषित रूप से नहीं पर अघोषित रूप से जरूरी है और मौखिक प्रचार से गांव-गांव में यह कहा भी जा रहा है कि मोदीजी को हमें इसलिये 400 की संख्या में जिताना है कि वे

संविधान को बदल सकें और हिंदू राष्ट्र बना सकें।

जिस प्रकार का मोदी गारंटी और मोदी का चित्र और नाम का प्रचार हो रहा है उससे एक ओर आशंका को बल मिलता है कि कहीं ऐसा तो नहीं कि श्री नरेन्द्र मोदी और भाजपा आगामी लोकसभा के चुनाव में 400 की संख्या लाने के बाद देश में संवैधानिक ढांचे को बदल दें और अभी देश ने जो संसदीयलोकतंत्र स्वीकार किया है उसे बदलकर राष्ट्रपति प्रणाली लाने का भीतर का लक्ष्य हो। तब यह प्रचार किया जायेगा कि संसदीय लोकतंत्र होने की वजह से सरकार काम नहीं कर पाती है याने लोकसभा और राज्यसभा में प्रतिपक्ष अडंगेबाजी करता है इसलिये अब देश में राष्ट्रपति प्रणाली होना आवश्यक है ताकि एक ही व्यक्ति सारे निर्णय कर सके। यह आशंका इसलिये भी तार्किक लगती है क्योंकि संघ के मूल विचारक स्वर्गीय गुरु गोलवलकर जी ने अपनी पुस्तक में एक व्यक्ति केन्द्रित राष्ट्र की कल्पना की है। वो संसदीय लोकतंत्र के पक्षधर नहीं थे बल्कि राष्ट्रपति प्रणाली के पक्षधर थे। वैसे भी कई हजार वर्ष से भारत राजतंत्रीय और रजवाड़ों का मुल्क रहा है जहां लोगों की मानसिकता कमोवेश अभी भी राजा को चुनने और देखने की है। और उसके इस मानस में नये राजतंत्र को स्वीकृत कराना आसान हो जायेगा। मुझे याद है कि जब श्री शिवराज सिंह चौहान पहली बार मुख्यमंत्री बने थे और उनके विधानसभा क्षेत्र दौरे के समय उनके जूते तत्कालीन कलेक्टर ने उन्हें उठाकर दिये थे जिसके समाचार और चित्र अखबारों में छपे थे। जब इसकी आलोचना हुई तो तत्कालीन भाजपा के संगठन मंत्री कप्तान सिंह सोलंकी ने बयान दिया था कि इसमें कुछ गलत नहीं है। मुख्यमंत्री राजा होता है। कांग्रेस पार्टी में तो पहले ही यह हो चुका है। 1976 में आपातकाल में स्व. संजय गांधी के जूते उठाते तत्कालीन मुख्यमंत्री स्व. नारायणदत्त तिवारी के चित्र सारे देश में देखे गये थे। उत्तरप्रदेश जैसे विशाल प्रदेश का मुख्यमंत्री उम्रदराज और वह भी जनमना जाति से ब्राह्मण अगर प्रधानमंत्री के बेटे के जूते उठा सकता है तो इस देश को कुछ भी स्वीकार्य हो सकता है। मैं व्यक्ति विरोधी नहीं हूं, न मोदी का भक्त हूं न अंध विरोधी हूं परंतु भारतीय लोकतंत्र को कायम रखने के लिये मैं चाहता हूं कि जनता हर पांच वर्ष में सरकारों को बदले ताकि सरकारें स्थिर होकर जड़ और तानाशाह न बन सकें। डॉ.लोहिया कहते थे कि जनता की सरकारों को रोटी के समान उलटते-पलटते रहना चाहिए तभी वे स्वादिष्ट रहती हैं, अन्यथा जलकर बेकार हो जाती हैं।

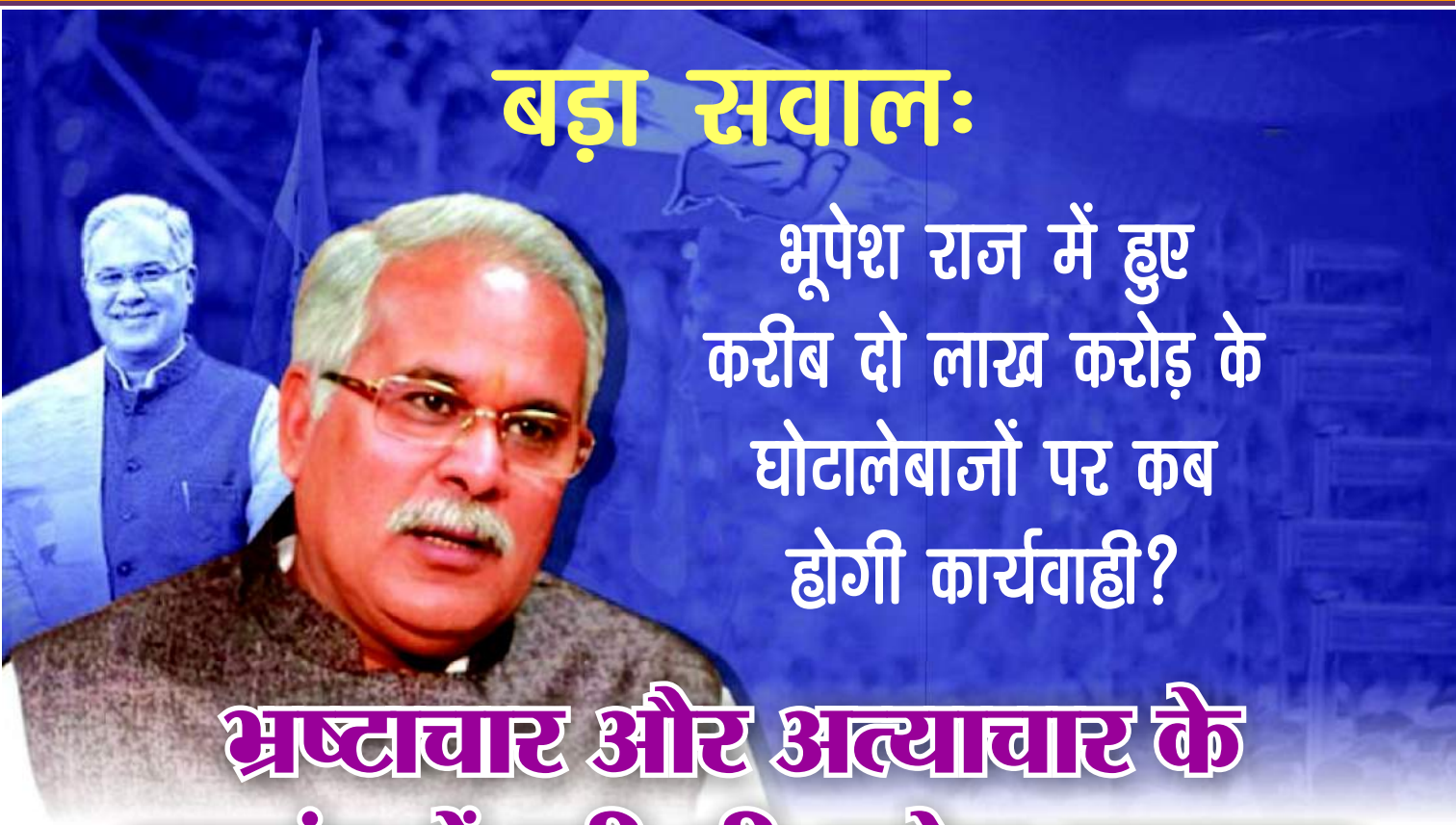

बड़ा सवालः

भूपेश राज में हुए करीब दो लाख करोड़ के घोटालेबाजों पर कब होगी कार्यवाही?

भ्रष्टाचार और अत्याचार के आखंड में डूबी थी भूपेश सरकार

विजया पाठक

दिसंबर 2023 में छत्तीसगढ़ की जनता ने भूपेश बघेल की पांच साल की भय-भ्रष्टाचार-दमन-अत्याचार अंत कर दिया था। पांच साल छत्तीसगढ़ महतारी को लूटने वाले भूपेश और उनकी चंडाल चौकड़ी ने अंग्रेजों जैसा शासन छत्तीसगढ़ के ऊपर किया। हालत यह थी आम जनता तो दुखी थी और उनके उपर लिखने बोलने वालों को प्रताड़ित किया जाता था। नई सरकार बनने के बाद चौकड़ी के खास अनिल टुटेजा, सौम्या चौरसिया, सूर्यकांत तिवारी, रानू साहू, अनवर ढेबर, चंद्रभूषण वर्मा तो अपनी नियत जेल पहुंच गए है पर छत्तीसगढ़ की जनता की मुख्य मांग अब चौकड़ी के बचे लोग जैसे चैतन्य बघेल उर्फ बिट्टू, विनोद वर्मा, विजय भाटिया इनके खास सिपहसालार आईपीएस अफ्सर आनंद छाबरा, आरिफ शेख़, दीपांशु काबरा, भाटिया शराब समूह राजनांदगांव, अभिषेक माहेश्वरी और इन सबके किंगपिन भूपेश बघेल पर सरकार कब कार्यवाही करेगी। निश्चित तौर पर इन सब की नियति भी जेल ही है चाहे सरकार के द्वारा या मेरे जैसे कोई व्यक्तिअदालत में न्याय हेतु जाए पर अंत में यह सब जेल ही जायेंगे। इनके खास सिपहसालार अधिकारी जिनपर अभी कोई ठोस कार्यवाही नहीं हुई है सिर्फ उनको लूप लाइन में डाला गया है। सूत्रों के अनुसार वो अभी भी भूपेश के खास संपर्क में है और भूपेश को वापस सत्ता में बिठाने के जुगत में है। खैर कांग्रेस ने भूपेश बघेल को राजनांदगांव से टिकट देकर अपने पैर में कुल्हाड़ी मार ली है। जहां वो 3-4 सीटों में

पांच साल छत्तीसगढ़ महतारी को लूटने वाले भूपेश और उनकी चंडाल चौकड़ी ने अंग्रेजों जैसा शासन छत्तीसगढ़ के ऊपर किया। हालत यह थी आम जनता तो दुखी थी और उनके उपर लिखने बोलने वालों को प्रताड़ित किया जाता था।

आगे दिख रही थी, भूपेश बघेल को टिकट मिलते ही सब भाजपा के पक्ष में हो गया है। आखिर जनता भूपेश का रावणराज को कैसे भुल सकती है जिसका पूरा दहन होना अभी बाकी है। छत्तीसगढ़ में भूपेश के नेतत्व वाली तत्कालीन कांग्रेस सरकार राज्य की जनता के लिए काला अंग्रेज साबित हुई थी। भूपेश के राज में राज्य में करीब दो लाख करोड़ के घोटाले हुए हैं। भूपेश सरकार भ्रष्टाचार और अत्याचार में आखंड डूबी थी। चुनाव प्रचार के दौरान भी भूपेश के भ्रष्टाचार और अत्याचार का जिक्र काफी हुआ। बड़ा सवाल यह है की आखिर क्यों छत्तीसगढ़ में भूपेश राज की भय-भ्रष्टाचार-दमन-अत्याचार की सरकार में बचे हुए मुख्य साजिशकर्ता, अधिकारी एवं चौकड़ी के खास पर कार्यवाही नहीं हो रही, जबकि जनता ने तब विधानसभा चुनाव और अब लोकसभा चुनाव में मूलतः इन्हीं कारणों से इनको रिजेक्ट किया है।

ऐसे कुछ मामले हैं जिन पर जनता भूपेश से हिसाब मांग रही है-

पीएससी घोटाला

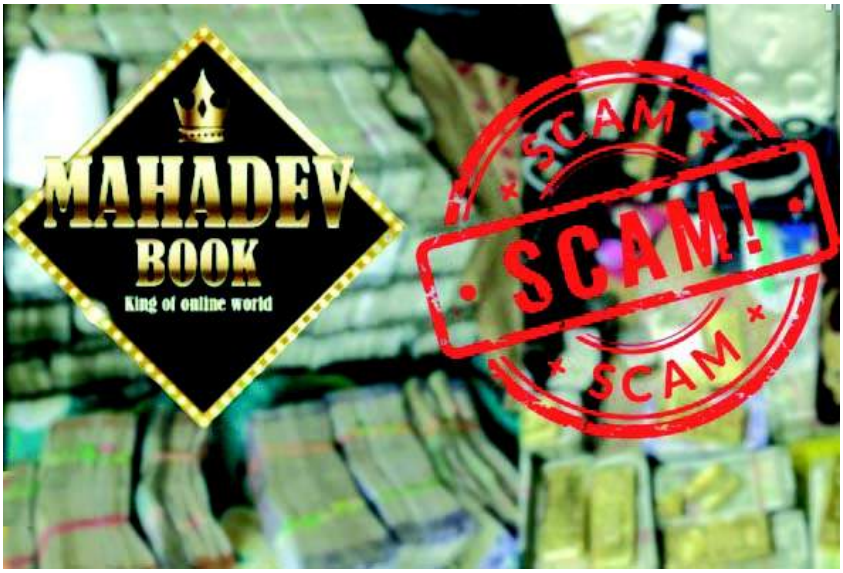

भूपेश सरकार में पीएससी के माध्यम से फर्जी नियुक्तियों का मामला सामने आया था। इसमें 18 लोगों की नियुक्ति संदेह के घेरे में आयी थी। इन नियुक्तियों में रसूखदार लोगों के नाम थे। मामला उजागर होने के बाद हाईकोर्ट ने सभी नियुक्तियों पर रोक तक लगाई है। इस घोटाले में तत्कालीन मुख्यमंत्री भूपेश बघेल का नाम भी जुड़ा था। बताया जा रहा था कि इतना बड़ा घोटाला बगैर सीएम हाउस की मर्जी के नहीं हो सकता है।

आत्महत्या करने वाले अश्विनी मिश्रा के सुसाइट नोट और आडियो क्लिप ने खोली थी भूपेश बघेल सरकार की पोल

स्व. अश्विनी मिश्रा के बघेल परिवार की पिछले 23 वर्षों से सेवा कर रहे थे साथ में कांग्रेस से भी जुड़े थे। उन्होंने भर्ती को लेकर किसी से पैसे दिए जिसे तब भूपेश के ओएसडी मरकाम और सौम्या चौरसिया को दे दिए। काम नहीं होने के बाद अभ्यर्थी ने अपना पैसा मांगा जिसे भूपेश के चौकड़ी ने देने से मना कर दिया, मिश्रा ने यह पैसे अपने आप से वापस कर आत्महत्या कर ली और एक सुसाइड नोट और ऑडियो क्लिप में पूरे घोटाले को उजागर कर दिया। मामला मुख्यमंत्री से जुड़ा था तो उसे दबा दिया गया था और आज तक कोई कार्यवाही नहीं की गई। प्रदेश में हजारों अश्विनी मिश्रा भूपेश और उसकी चौकड़ी के कारण अपनी जान दे चुके है ऐसे में इन सब को इंसाफ कैसे मिलेगा।

पत्रकारों पर अत्याचार

छत्तीसगढ़ में भूपेश और उसकी चंडाल चौकड़ी के जनता पर आतंक को छापने

वाले पत्रकारों को खूब प्रताड़ित किया गया।छत्तीसगढ़ के गठन के बाद सर्वाधिक मामले भूपेश सरकार में पत्रकारों के खिलाफ दर्ज किये गये। यह वह पत्रकार थे जो भूपेश बघेल सरकार के काले कारनामों को उजागर कर रहे थे लेकिन भूपेश सरकार खबरों की जांच पड़ताल करने की बजाए पत्रकारों के खिलाफ दंडात्मक रू ख अपनाने लगे थे। वरिष्ठ पत्रकार सुनील नामदेव के खिलाफ मोर्चा खोला गया। उनके आवास को बुल्डोजर चलाया गया। नामदेव के खिलाफ झूठे मुकदमें दर्ज कर जेल में रखने का षड़यंत्र रचा। यहां तक उन्हें सैनेटाईजर तक पिलाने का प्रयास किया गया था। इस मामले में भूपेश की टोली में शामिल चुनिंदा आईपीएस अफसरों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। मेरे (विजया पाठक) खिलाफभी भारी षड़यंत्र रचा गया। मैने जब अनिल टुटेजा, सौम्या के खिलाफकोल और शराब घोटाला उजागर किया तो मेरे खिलाफ अवैध केस रजिस्टर किए गए, छत्तीसगढ़ में मेरा आना बैन कर दिया गया, इसके बाद जैसे ही मैंने महादेव सट्टा घोटाला ब्रेक किया तो मेरे भोपाल स्थित आवास पर चार बार छत्तीसगढ़ पुलिस आयी और मेरी अवैध गिरफ्तारी की साजिश रची गई, सरकार से तो यह इंस्ट्रक्शन थे मुझे बाल पकड़कर घसीटकर छत्तीसगढ़ लाया जाए या रास्ते में मेरा एनकाउंटर ही करवा दिया जाए। इसके अलावा राज्य के कई पत्रकार जो ग्रामीण अंचलों में रिपोर्टिंग कर रहे थे। उनको भी नहीं बख्शा गया। कमल शुक्ला को टार्चर किया। नीलेश शर्मा, भूपेश परमार, मनोज सिंह ठाकुर के साथ भी ऐसा किया गया। जीतेन्द्र जायसवाल को एक दर्जन से अधिक मामले दर्ज कर जिलाबदर तक किया गया। पत्रकारों का जिला बदर आजतक नहीं सुना। पत्रकारों के साथ स्वतंत्रता आंदोलन की तर्ज पर जैसे अंग्रेज करते थे वैसा काम किया गया।

महादेव सट्टेबाजी घोटाला

छत्तीसगढ़ के पूर्व मुख्यमंत्री भूपेश बघेल सीधे तौर पर इस घोटाले में शामिल हैं। इस

कथित घोटाले के मास्टरमाइंड और ऐप के मालिक ने अपना एक वीडियो जारी कर कहा कि उसने भूपेश बघेल को 508 करोड़ रूपए नकद पहुँचाए हैं। ये पैसे चुनाव में इस्तेमाल किए गए हैं। उसने बताया कि एक-एक पैसों का हिसाब उसके पास है। जानकारी के अनुसार महादेव सट्टेबाजी ऐप मामला 15 हजार करोड़ का है और इसमें अभी जाँच जारी है। इतने पैसों की तो मनी लॉन्ड्रिंग का आरोप है, जिस पर ईडी ने केस दर्ज किया है। इस मामले में भूपेश बघेल के करीबी लोग जेल में बंद हैं।

बघेल सरकार का शराब घोटाला

भूपेश बघेल ने वादा किया था कि कांग्रेस सत्ता में आएगी तो छत्तीसगढ़ में शराबबंदी करेगी। उल्टा भूपेश बघेल और उनके बेटे पर आरोप हैं कि उन्होंने कमीशनखोरी करके 2161 करोड़ रुपए का घोटाला किया जबकि अभी इसकी पूरी डिटेल भी सामने नहीं आई है। सच्चाई यह है कि छत्तीसगढ़ में हजारों करोड़ रु पए का शराब घोटाला हुआ है। इस मामले में ईडी चार्जशीट भी दाखिल कर चुकी है और बताया है कि एजाज़ ढेबर के भाई अनवर ढेबर के आपराधिक सिंडिकेट के जरिए आबकारी विभाग में बड़े पैमाने पर घोटाला हुआ।

कोयला अवैध लेवी टैक्स घोटाला

भूपेश बघेल सरकार ने खदानों से निकलने वाले कोयला पर भी घोटाला किया है। माल ढुलाई से जुड़ा 2000 करोड़ से अधिक के घोटाले का आरोप भी उस पर हैं। बताया जा रहा है कि 25 रु पए प्रति टन की वसूली की गई है। कई लोग इस मामले में भी गिरफ्तार हुए हैं। छत्तीसगढ़ में वरिष्ठ नौकरशाहों, व्यापारियों, राजनेताओं और बिचौलियों से जुड़ा एक समूह ढुलाई किये जाने वाले प्रति टन कोयले पर अवैध रूप से 25 रुपये का कर वसूल रहा था। अनुमान है कि इससे प्रतिदिन लगभग 2-3 करोड़ रुपये अर्जित किए जाते हैं।

नान घोटाले में चढ़ाई जीपी सिंह की बलि

छत्तीसगढ के इतिहास का सबसे बड़ा घोटाला था नान घोटाला। जब भूपेश बघेल विपक्ष में थे तब उन्होंने कहा था कि सत्ता में आते ही नान घोटाले आरोपियों को जेल में डाला जायेगा। लेकिन जैसे ही वह सत्ता में आये उन्होंने इस घोटाले के मास्टर माईंड अनिल टुटेजा और डॉ. आलोक शुक्ला को अपना खास बना लिया। पूरे पांच साल तक यह दोनों अधिकारी भूपेश बघेल के खास बने रहे।

नान की नवगठित एसआईटी द्वारा बरती गई अनियमित कार्यवाही से मुख्य न्यायाधीश से नाराजगी को दूर करने के लिए जीपी सिंह की पदस्थापना एसीबी/ईओडब्ल्यू तथा एसआईटी के प्रमुख के रूप में की गई। भूपेश बघेल ने पूर्व निर्धारित उददेश्य अनुसार जीपी सिंह पर प्रदेश के शीर्ष भाजपा नेताओं के विरूद्ध कार्यवाही करने का लगातार दवाब बनाया गया। जैसे पूर्व मुख्यमंत्री रमन सिंह और उनकी पत्नि श्रीमती वीणा सिंह को नान घोटाले में जप्त डायरी में उल्लेखित सीएम सर और सीएम मेडम के आधार पर तथा विधायक देवजी भाई पटेल को फर्जी मामले में फंसाने के लिए निर्देशित किया गया था। जबकि जांच में यह स्पष्ट हो चुका था कि नान पदस्थ चिंतामणि चंद्राकर को सीएम सर के नाम से भी पुकारा जाता था। जीपी सिंह के मना करने पर भूपेश बघेल ने कई फर्जी मुकदमें दायर करवाये, फर्जी गवाह बनवाये और जेल में डाला। अपने ईमानदार बेटे की यह हालत देखकर जीपी सिंह के माता पिता को काफी सदमा लगा। और कभी बिस्तर से नहीं उठ पाये। और अपने प्राण छोड़ दिये। भूपेश सरकार में भ्रष्टाचार करने से मना करने से ऐसी दुर्दशा होती थी।

गोठान घोटाला

भूपेश राज में बिहार चारा घोटाला से भी बड़ा गोठान घोटाला सामने आया था। यह घोटाला गौमाता के नाम पर किया गया था। गोठान के नाम पर विभिन्न मदों से 1300 करोड़ रूपये से अधिक की राशि खर्च की गई थी। इसके अलावा भी डीएमएफटी घोटाला, रोजगार घोटाला, जमीन आवंटन घोटाला, शिक्षक भर्ती घोटाला, बारदाना खरीदी घोटाला, पीडीएस घोटाला, साड़ी खरीदी घोटाला, पीएम आवास घोटाला आदि घोटाले हैं जिनका जिक्र हो रहा है।

बेलगाम नक्सलियों पर कसता शिकंजा

प्रमोद भार्गव

छत्तीसगढ़ में नक्सलियों का संगठन अब सिमटता दिखाई दे रहा है। कांकेर में सुरक्षाबलों ने मुठभेड़ में 29 नक्सली ढेर कर दिए। इस वर्ष अब तक 80 नक्सली मारे जा चुके हैं। अतएव भारत सरकार का दावा है कि छत्तीसगढ़ में नक्सली सीमित क्षेत्र में सिमटकर रह गए हैं, जिनका जल्द सफाया कर दिया जाएगा। हालांकि ऐसे दावे नए नहीं हैं। केंद्र और राज्य सरकारें नक्सलियों के समूह में मारे जाने के बाद ये दावे हमेशा करती रही हैं। बावजूद माओवादी हिंसा देखने में आती रही है। इसके शिकार सुरक्षा बल और स्थानीय पुलिसकर्मी होते रहे हैं। बड़ी संख्या में कांग्रेस और भाजपा के नेता भी मारे गए हैं। दरअसल सीमित क्षेत्र में सिमट जाने के बावजूद नक्सलियों को आधुनिक हथियार और दुर्गम क्षेत्रों में भी काम करने वाली संचार प्रणाली की उपलब्धता कराई जा रही है। इससे साफ होता है कि नक्सलियों की चैन अभी पूरी तरह टूटी नहीं है। इसीलिए 40 साल से नक्सलियों का कहर सुरक्षाबलों से लेकर उनकी मुखबिरी करने वाले निर्दोश लोगों पर टूटता रहा है। लेकिन बीते साढ़े तीन माह के भीतर 80 नक्सलियों का मारा जाना एक बड़ी उपलब्धि है और कहा जा सकता है कि सरकार और सुरक्षाबल इन्हें निर्मूल कर देने की दिषा में आगे बढ़ रहे हैं।

छत्तीसगढ़ में नक्सली तंत्र कमजोर जरूर हुआ है, लेकिन उसकी शक्तिशेष है। पुलिस व गुप्तचर एजेंसियां इनका सुराग लगाने में नाकाम होती रही हैं, जबकि शांति का पैगाम देकर नक्सली अपने संगठन की ताकत बढ़ाने और हथियार इकट्ठा करने में लगे रहते हैं। ऐसा इसलिए है कि छत्तीसगढ़ के ज्यादातर नक्सली आदिवासी हैं और इनका कार्यक्षेत्र वह आदिवासी बहुल इलाका हैं, जिससे ये खुद आकर नक्सली बने हैं। इसलिए इनका सुराग सुरक्षाबलों को लगा पाना मुश्किल होता है। लेकिन ये इसी आदिवासी तंत्र से बने मुखबिरों से सूचनाएं आसानी से हासिल कर लेते हैं। दुर्गम जंगली क्षेत्रों के मार्गों, छिपने के स्थलों और जल स्रोतों से भी ये खूब परिचित हैं। इसलिए ये और इनकी षक्ति बरकरार है। हालांकि अब इनके हमलों में कमी आई है। दरअसल इन वनवासियों में अर्बन माओवादी नक्सलियों ने यह भ्रम फैला दिया है कि सरकार उनके जंगल, जमीन और जल-स्रोत उद्योगपतियों को सौंपकर उन्हें बेदखल करने में लगी है, इसलिए यह सिलसिला जब तक थमता नहीं है, विरोध की मुहिम जारी रहनी चाहिए। सरकारें इस समस्या के निदान के लिए बातचीत के लिए भी आगे आई है, लेकिन बेनतीजा रही। इन्हें बंदूक के जरिए भी काबू में लेने की कोषिषें

हुई हैं। लेकिन नतीजे अनुकूल नहीं रहे। एक उपाय यह भी हुआ है कि जो नक्सली आदिवासी समर्पण कर मुख्यधारा में आ गए उन्हें बंदूकें देकर नक्सलियों के विरुद्ध खड़ा करने की रणनीति भी अपनाई गई। इस उपाय में खून-खराबा तो बहुत हुआ, लेकिन समस्या बनी रही। गोया, आदिवासियों को मुख्यधारा में लाने से लेकर विकास योजनाएं भी इस क्षेत्र को नक्सल मुक्तकरने में अब तक सफल नहीं हो पाई हैं।

बस्तर के इस जंगली क्षेत्र में नक्सली नेता हिडमा का बोलबाला है। वह सरकार और सुरक्षाबलों को लगातार चुनौती दे रहा है, जबकि राज्य एवं केंद्र सरकार के पास रणनीति की कमी है। यही वजह है कि नक्सली क्षेत्र में जब भी कोई विकास कार्य या चुनाव प्रक्रिया संपन्न होती है तो नक्सली उसमें रोड़ा अटकाते हैं। नक्सली समस्या से निपटने के लिए राज्य व केंद्र सरकार दावा कर रही हैं कि विकास इस समस्या का निदान है। यदि छत्तीसगढ़ सरकार के विकास संबंधी विज्ञापनों में दिए जा रहे आंकड़ों पर भरोसा करें तो छत्तीसगढ़ की तस्वीर विकास

के मानदण्डों को छूती दिख रही हैं, लेकिन इस अनुपात में यह दावा बेमानी है कि समस्या पर अंकुश लग रहा है? बल्कि अब छत्तीसगढ़ नक्सली हिंसा से सबसे ज्यादा प्रभावित राज्य बन गया है। अब बड़ी संख्या में महिलाओं को नक्सली बनाए जाने के प्रमाण भी मिल रहे हैं। बावजूद कांग्रेस के इन्हीं नक्सली क्षेत्रों से ज्यादा विधायक जीतकर आते रहे हैं। हालांकि नक्सलियों ने कांग्रेस पर 2013 में बड़ा हमला बोलकर लगभग उसका सफाया कर दिया था। कांग्रेस नेता महेन्द्र कर्मा ने नक्सलियों के विरूद्ध सलवा जुडूम को 2005 में खड़ा किया था। सबसे पहले बीजापुर जिले के ही कुर्तु विकासखण्ड के आदिवासी ग्राम अंबेली के लोग नक्सलियों के खिलाफ खड़े होने लगे थे। नतीजतन नक्सलियों की महेन्द्र कर्मा से दुश्मनी ठन गई। इस हमले में महेंद्र कर्मा के साथ पूर्व केंद्रीय मंत्री विद्याचरण शुक्ल, कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष

नंदकुमार पटेल और हरिप्रसाद समेत एक दर्जन नेता मारे गए थे। लेकिन कांग्रेस ने 2018 के विधानसभा चुनाव में अपनी खोई शक्ति फिर से हासिल कर ली थी, बावजूद नक्सलियों पर पूरी तरह लगाम नहीं लग पाई। 2023 के विधानसभा चुनाव में कांग्रेस को अपदस्थ कर भाजपा अब फिर सत्ता में है। उसके बाद से ही नक्सलियों के सफाए का सिलसिला चल रहा है।

व्यवस्था बदलने के बहाने 1967 में पष्चिम बंगाल के उत्तरी छोर पर नक्सलवाड़ी ग्राम से यह खूनी आंदोलन शुरू हुआ था। तब इसे नए विचार और राजनीति का वाहक कुछ साम्यवादी नेता, समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री और मानवाधिकारवादियों ने माना था। लेकिन अंततः माओवादी नक्सलवाद में बदला यह तथाकथित आंदोलन खून से इबारत लिखने का ही पर्याय बना हुआ है। जबकि इसके मूल उद्देष्यों में नौजवानों की बेकारी, बिहार में जाति तथा भूमि के सवाल पर कमजोर व निर्बलों का उत्थान, आंध्रप्रदेश और अविभाजित मध्य-प्रदेश के आदिवासियों का कल्याण तथा राजस्थान के श्रीनाथ मंदिर में आदिवासियों के प्रवेश शामिल थे। किंतु विशमता और पोषण से जुड़ी भूमण्डलीय आर्थिक उदारवादी नीतियों को जबरन अमल में लाने की प्रक्रिया ने देष में एक बड़े लाल गलियारे का निर्माण कर दिया है, जो पशुपति; नेपालद्ध से तिरु पति; आंध्रप्रदेश तक जाता है। इस पूरे क्षेत्र में माओवादी वाम चरमपंथ पसरा हुआ है। जब किसी भी किस्म का चरमपंथ राष्ट्र-राज्य की परिकल्पना को चुनौती बन जाए तो जरु री हो जाता है, कि उसे नेस्तानाबूद करने के लिए जो भी कारगर उपाय उचित हों, उनका उपयोग किया जाए ?

हालांकि देश में तथाकथित शहरी बुद्धिजीवियों का एक तबका ऐसा भी है, जो माओवादी हिंसा को सही ठहराकर संवैधानिक लोकतंत्र को मुखर चुनौती देकर नक्सलियों का हिमायती बना हुआ है। यह न केवल उनको वैचारिक खुराक देकर उन्हें उकसाने का काम करता है, बल्कि उनके लिए धन और हथियार जुटाने के माध्यम भी खोलता है। बावजूद इसे विडंबना ही कहा जाएगा कि जब ये राष्ट्रघाती बुद्धिजीवी पुख्ता सबूतों के आधार पर गिरफ्तार किए गए तो बौद्धिकों और वकीलों के एक गुट ने देश के सर्वोच्च न्यायलय को भी प्रभाव में लेने की कोशिश की और गिरफ्तारियों को गलत ठहराया था। माओवादी किसी भी प्रकार की लोकतांत्रिक प्रक्रिया और अभिव्यक्तिकी स्वतंत्रता को पसंद नहीं करते हैं। इसलिए जो भी उनके खिलाफ जाता है, उसकी बोलती बंद कर दी जाती है।

व्यवस्थापन की नीति न्यायसंगत बने

रघु ठाकुर

80 के दशक तक कोयले के क्षेत्र में एक विशेष कानून था जिसका नाम था कोल बियरिंग एरिया लैंड एक्विजिशन एक्ट और इस कानून के तहत अधिकारियों को यह अधिकार दिए गए थे कि अगर किसी व्यक्तिके जमीन के नीचे कोयला है तो वह उसे एक सामान्य चिटठी जारी कर जमीन का अधिग्रहण कर सकते हैं, ना कोई मुआवजा का फैसला होता था ना कोई वैकल्पिक पुनर्वास की व्यवस्था होती थी और विशेषतः आदिवासी अंचलों के गरीब लोग जिनकी जमीनों के नीचे कोयला होता था वह इस भय में जीते थे कि पता नहीं किस दिन उनकी जमीन के अधिग्रहण का पत्र आ जाएगा। कोरबा के पास कुसमुंडा आदि गांव के लोगों ने अपने दुख की सूचना हमें दी थी और मैं और मेरे साथी आनंद मिश्रा और उस समय के एक और हमारे कार्यकर्ता मूरीतराम सहित हम लोग वहां गए थे। वहां के किसानों का पता नहीं क्यों ऐसा विश्वास था कि मेरे जाने के बाद उनकी लड़ाई बढ़ेगी और वह लोग जीतेंगे? मुझे याद है कि कुसमुंडा के गांव में जब मैं रात में रु का हुआ था तो उस घर के मालिक रात को मेरे पास आकर बैठे और बोले कि मुझे विश्वास है कि अब आपके आने के बाद हमारी जमीन कोयला अधिकारी नहीं छीन पाएंगे। हमें न्याय मिलेगा।

मैं उनके विश्वास से प्रभावित भी हुआ और घबराया भी क्योंकि भारत सरकार के बने हुए कानून को बदलवाने का संघर्ष कोई आसान संघर्ष नहीं था। यह वह दौर था जब दिल्ली में स्वर्गीय राजीव गांधी प्रधानमंत्री थे और उनके पास तीन चौथाई बहुमत था। राज्य में भी कांग्रेस सरकार थी जो विशाल बहुमत की संसद के तीन चौथाई संख्या की थी और इस बात की उम्मीद भी कम ही थी कि सरकार इन गरीबों के पक्ष में कुछ करेगी। यह कानून भी कांग्रेस सरकारों के जमाने में ही बनाया गया था इतना ही नहीं कांग्रेस सरकार ने कोयला खोदने के लिए जो पुरानी पद्धति थी जिसमें भूमिगत खदानें हुआ करती थीं और अपने हाथ से कोयला खोदकर कोयले के मजदूर उसे बाहर निकालते थे उसे बदलकर जर्मनी और अन्य देशों से बड़ी-बड़ी मशीनें आयत की थीं जिन्होंने बड़े पैमाने पर कोयला खोदना शुरू

किया था तब ओपन माइंस का सिस्टम यानी खुली खदानों की पद्धति शुरू हो गई थी और रातों-रात गांव की जमीन के नीचे भारी मात्रा में कोयला निकाल देती थी तथा वहां तालाब जैसे बन जाते थे और बाजू में मिट्टी के पहाड़ बन जाते थे। इतना ही नहीं पास में जो थर्मल पावर के प्लांट लगे थे उसकी राख बड़े पैमाने पर निकलती थी और पास की नदी में बहाई जाती थी। सारा का सारा नदी का पानी राख से प्रदूषित हो जाता था तथा इसी का इस्तेमाल करने को सारा अंचल लाचार था। इस अंचल में कोयला का होना सरकार के लिए, ठेकेदारों के लिए, माफियाओं के लिए, नौकरशाओं के लिए तथा अमीरों के लिए तो सोने जैसा धंधा था, परंतु गरीबों के लिए यह विकास के नाम की खुली मौत थी। हम लोगों ने इन गांवों के लोगों को इकटठा कर लड़ाई लड़ना शुरू किया और धीरे-धीरे आसपास के बीसियों गांवों में यह लड़ाई पहुंच गई। बड़ी संख्या में औरतें और बच्चे सड़कों पर निकलने लगे और इतना भारी संघर्ष शुरू हुआ कि लोगों ने ना मौसम देखा, ना सत्ता देखी, ना दमन की चिंता की और सड़कों पर निकल पड़े। मुझे याद है कि, एक दिन जब हम लोग कुसमुंडा से एक बड़ा जुलूस लेकर जिसमें आदमियों के साथ-साथ बड़ी संख्या में औरतें और छोटे-छोटे बच्चे शामिल थे, कोरबा से जुलूस लेकर आ रहे थे उस दिन वहां का तापमान लगभग 50 डिग्री के आसपास था। सड़कों के पास के पेड़ों पर बैठे हुए पक्षी टप-टप कर पेड़ों से नीचे गिर कर मर रहे थे, इसके बावजूद भी गरीब लोग पीछे हटने को तैयार नहीं थे। हम लोगों के लगातार संघर्ष से कुछ अच्छे परिणाम आए और स्थानीय कांग्रेस पार्टी के स्वर्गीय प्रभात मिश्रा जो आज जिंदा नहीं हैं, परंतु हम लोग उनके आभारी हैं कि उन्होंने इस संघर्ष से प्रभावित होकर अपनी भूमिका को बदला। उनके अपने संसदीय क्षेत्र के भी काफी गांव इस काले कानून से प्रभावित थे और उन्होंने हमारी समस्याओं को समझा। उस समय स्वर्गीय वसंत साठे जो नागपुर से सांसद व भारत के कोयला मंत्री भी थे स्वर्गीय बसंत साठे का भी संबंध आरंभ में समाजवादी पार्टी के साथ रहा था और प्रजा समाजवादी पार्टी में थे, बाद में वह कांग्रेस में चले गए थे। स्वर्गीय प्रभात मिश्रा का संबंध भी एक स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के परिवार से था और उनके परिजन इस आंदोलन में मानसिक और शारीरिक रूप से हमारे साथ थे, साथी धीरेंद्र मिश्रा, आदित्य मिश्रा, आनंद मिश्रा यह सभी प्रभात मिश्रा जी के परिवार से थे। इन लोगों ने भी पहल की थी। बिलासपुर के ही एक और मंत्री जो राज्य सरकार के मंत्री थे स्वर्गीय बी.आर. यादव, उन्होंने भी आवश्यक पहल की और स्वर्गीय प्रभात मिश्रा इस बात को तैयार हुए कि वह स्वर्गीय बसंत साठे से हम लोगों की मुलाकात कराएंगे और इस बर्बर कानून को बदलने के बारे में हमारे पक्ष का समर्थन करेंगे। और उन्होंने अपने वायदे को निभाया भी और बसंत साठे से मुलाकात कराई तथा

जब हमने अपनी मांगे व उनके तर्क रखे तो उनकी तार्किकता से बसंत साठे भी प्रभावित हुए। मुझे स्मरण है कि हमने जो मांगें रखी थी, वह थी-

■ कोल बियरिंग एरिया, लैंड एक्विजिशन एक्ट को समाप्त कर नया कानून बनाया जाए।

■ जिस किसान की जमीन का अधिग्रहण किया जाता है उसे अधिग्रहण के पहले मुआवजा दिया जाए। साथ ही उनके लिए वैकल्पिक बसावट के लिए जमीन दी जाए।

■ जिस किसान की जमीन का अधिग्रहण किया जाता है उसे अधिग्रहण के पहले उसके साथ ही उसके मकान और वृक्षों का भी अधिग्रहण किया जाए, क्योंकि जब जमीन ही नहीं रहेगी तो वह किसान मकान, वृक्षों का क्या करेगा?

■ जमीन का मुआवजा शहर की जमीनों के बराबर याने बाजार दर की तुलना से 50 प्रतिशत अतिरिक्त जोड़कर दिया जाए।

■ इन किसानों को बगैर किसी भुगतान के कंपनी का अंशधारी बनाया जाए ताकि इनको नियमित लाभ का हिस्सा मिल सके। कंपनी के काम में विस्थापित परिवारों के किसी एक व्यक्ति को स्थाई रोजगार दिया जाए।

■ जहां इन लोगों को विस्थापन के बाद बसाहट के लिए जमीन दी जाती है वहां गाँव खाली करने के पहले सामुदायिक भवन, सड़क, पानी, बिजली, स्कूल और चिकित्सालय की व्यवस्था की जाएं।

भारत सरकार में इन मांगों को लेकर विचार विमर्श हुआ। कोयला मंत्री बसंत साठे की दिलचस्पी से यह काम शुरू हुआ। उस समय मैं कोयला कामगार पंचायत का अध्यक्ष और हिंद मजदूर किसान पंचायत का राष्ट्रीय उपाध्यक्ष भी था जिसके अध्यक्ष स्वर्गीय साथी जॉर्ज फर्नांडीज थे। सरकार के आश्वासन को पूरा कराने के लिये सर्वोच्च न्यायालय में याचिका भी दायर हुई थी, यह याचिका समूचे देश के लिये उपरोक्तव्यवस्था

बनाने के लिये की गई, जिसमें सुप्रीम कोर्ट ने भी सरकार को निर्देश दिये थे, बाद में कानून में बदलाव किया गया और जमीन के अधिग्रहण के पहले मुआवजा देना बाध्यकारी हुआ। तथा बाजार दर से डेढ़ गुना मुआवजे की देने की सहमति बनी। यह भी निर्णय हुआ कि जो किसान विस्थापित होकर जा रहा है उसकी सारी जमीन, मकान एवं पेड़ आदि सबके मुआवजे तय कर उन्हें मुआवजा राशि दी जाए, क्योंकि सरकार अधिकारी यह भी गड़बड़ी करते थे कि किसी व्यक्ति के पास अगर तीन एकड़ जमीन है तो दो एकड़ का अधिकरण करते थे और एक एकड़ छोड़ देते थे, तथा कहते थे कि यह तो अभी कृषि भूमि है। इसलिए मकान के खाली होने का या पेड़ों आदि का मुआवजे का कोई कारण नहीं है। जबकि स्थिति यह होती थी कि खदानों की खुदाई से और ब्लास्टिंग से न केवल बची हुई जमीन बर्बाद हो जाती थी बल्कि मकान टूट जाते थे। यहां तक कि पेड़ भी टूट जाते थे। वैसे भी मात्र आधा या एक एकड़ जमीन से कोई किसान क्या कृषि कर सकता है? क्या जीवनयापन कर सकता है? अतः इस निर्णय से किसानों को लाभ पहुंचा। यह भी स्वीकृति हुई कि जहां विस्थापन के बाद यह किसान लोग जाएंगे अगर वहां सरकारी जमीन होगी तो उन्हें जमीन दी जाएगी तथा उनके मकान बनाने के लिए सहयोग किया जाएगा। वहां सामुदायिक भवन, पानी, बिजली और सड़क, स्कूल की व्यवस्था विस्थापन के पहले की जाएगी। अस्पतालों के लिए भी है तय हुआ कि जब तक स्थानीय अस्पताल नहीं बनता है तब तक कोयले के सरकारी कंपनियों के लिए बनाई गई अस्पतालों में इन्हें इलाज की व्यवस्था दी जाएगी।

दरअसल यह व्यवस्थापन की नीति समूचे देश में सभी क्षेत्रों में बनाई जाना आवश्यक है और इसके लिए सतत संघर्ष की आवश्यकता है पर दुखद है कि सरकार बहरी और समाज गूंगा है तथा पीड़ित

नेपाल में हिंदू राष्ट्र के लिए शंखनाद

प्रमोद भार्गव

भारत के पड़ोसी और धार्मिक व सांस्कृतिक एकरूपता से जुड़े देश नेपाल में हिंदू राष्ट्र घोषित किए जाने की मांग के लिए शंखनाद शुरू हो गया है। वहां अनेक संगठन सड़कों पर उतरकर राजशाही के पक्ष में आंदोलन कर रहे हैं। इस मांग में पुरूषों के साथ महिलाएं भी कंधे से कंधा मिलाकर आंदोलन में शामिल हैं। इस प्रदर्शन की अगुआई मुख्य रूप से राष्ट्रवादी राष्ट्रीय प्रजातंत्र पार्टी कर रही है। यह नेपाल की पांचवीं सबसे बड़ी पार्टी है। इस दल के प्रवक्ता मोहन श्रेष्ठ की मांग है कि नेपाल में राजशाही की पुनर्बहाली हो, देश में संघीय व्यवस्था लागू हो और इसे हिंदू राष्ट्र घोषित किया जाए। इन प्रदर्शनकारियों के हाथों में शंख थे, जिनसे लोगों ने राजधानी काठमांडू में सरकारी भवनों के सामने कान फोड़ देने वाला शंखनाद की अपनी मांगों का स्वर नेपाल के आकाश में गूंजा दिया। इस समय नेपाल में भारत में जिस तरह से धर्म और संस्कृति का पुर्नत्थान हो रहा है, उसका अनुकरण भी देखने में आ रहा है। नेपाल को 2007 में पंथनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया गया था। नतीजतन 2008 में राजशाही व्यवस्था समाप्त कर दी गई थी।

इस आंदोलन को राष्ट्र, राष्ट्रवाद, धर्म, संस्कृति और नागरिकों की रक्षा के लिए अभियान का दर्जा दिया जा रहा है। 2008 में नेपाल के गणराज्य बनने के बाद से कारोबारी दुर्गा प्रसाई आंदोलन को हवा दे रहे हैं। एक समय प्रसाई के प्रधानमंत्री प्रचंड और ओली के साथ घनिष्ठ संबंध थे, लेकिन अब वह नियमित रूप से आलोचना कर रहे हैं। इसी समय राजशाही के दौर में गृहमंत्री रहे कमल थापा ने हिंदू राष्ट्र की मांग के लिए नया गठबंधन बनाया है। पूर्व नरेश ज्ञानेंद्र शाह भी एकाएक सक्रिय होकर सार्वजनिक कार्यक्रमों में भागीदारी करने लगे

हैं। वह मंदिरों में भी होने वाली पूजा में शामिल हो रहे हैं। राम मंदिर में 22 जनवरी को रामलला की प्राण-प्रतिष्ठा के बाद इस मांग में तेजी आई है।

हालांकि यह मांग कोई नई नहीं है। नेपाल के पूर्व प्रधानमंत्री शेर बाहदुर देउबा अप्रैल-2022 में भारत आए थे। तब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से हुई मुलाकात के बाद से ही जनता में नेपाल को हिन्दू राष्ट्र बनाये जाने मांग जोर पकड़ रही है। इस मांग में नेपाल के मुस्लिम भी शामिल हैं। इस दोस्ताना शिखर-वार्ता से तय हुआ था कि नेपाल चीन के विस्तारवादी शिकंजे से मुक्त होने की राह पर चल पड़ा है। नेपाल ने अब भरोसा दिया है कि सीमा विवाद का राजनीतिकरण नहीं होगा और जल्द इस विवाद को द्विपक्षीय बातचीत से सुलझा लिया जाएगा। आजादी के अमृत महोत्सव

के चलते भारत ने नेपाल में 75 विकास परियोजनाएं जमीन पर उतारी हैं। भारत के आर्थिक सहयोग से तैयार बिहार के जयनगर और नेपाल के कुर्था तक रेल सेवा का उद्घाटन भी किया था। याद रहे दोनों देशों के बीच रोटी-बेटी के संबंध रामायणकाल से चले आ रहे हैं। राम की धर्मपत्नी सीता नेपाल के जनकपुर से थीं। भारत के धार्मिक

श्रद्धालुओं को यह रेल जनकपुर धाम तक पहुंचाना आसान कर देगी। हालांकि इस मुलाकात के कुछ समय बाद ही नेपाल में सत्ता परिवर्तन हुआ और मओवादी चीन से प्रभावित पुष्प कमल दहल प्रचंड फिर से प्रधानमंत्री बन गए थे।

दरअसल नेपाल की कम्युनिष्ट पार्टी का चीन की गोद में बैठना और भारत विरोधी अभियान चलाना देश की जनता को नागवार गुजर रहा है। राजशाही के साथ हिंदू राष्ट्र बहाली की मांग भी मुखर हुई है। नेपाल के मुसलमान भी देश को हिंदू राष्ट्र बनाने के पक्ष में हैं। नेपाल को हिंदू राष्ट्र बनाने की मांग के समर्थन में हो रहे प्रदर्शनों में शामिल राप्ती मुस्लिम सोसायटी के अध्यक्ष अमजद अली ने कहा है कि इस्लाम को बचाने के लिए यह जरूरी है। समाज के कुछ नेताओं का मानना है कि हिंदू राष्ट्र का दर्जा खत्म होने के बाद से नेपाल में ईसाई मिशनरियां ज्यादा सक्रिय हो गई हैं। मिशनरी इस स्थिति का फ ायदा उठाकर लोगों का धर्म परिवर्तन करवा रही हैं। यूसीपीएन माओवादी के मुस्लिम मुक्तिमोर्चा भी मिशनरियों के बढ़त प्रभाव को स्वीकार नहीं करता है। राष्ट्रवादी मुस्लिम मोर्चा भी देश की धर्मनिरपेक्ष पहचान नहीं चाहता है। 80 फीसद मुस्लिम आबादी देश की हिंदू पहचान बहाल करने के पक्ष में है।

गौरतलब है कि राजशाही समर्थक राष्ट्रीय प्रजातंत्र पार्टी और कई हिंदूवादी संगठन काफी समय से नेपाल को फिर से हिंदू राष्ट्र का दर्जा देने के लिए अभियान चला रहे हैं। पिछले महीने राजनीतिक दलों के बीच नए संविधान में देश की धर्मनिरपेक्षता की पहचान खत्म करने को लेकर सहमति बनी थी। इसके बाद से यह मांग और तेज हो गई है। देश के सभी समुदाओं के लोग मानते हैं कि पुरानी हिंदू पहचान की बहाली का कोई विकल्प नहीं है। धर्मनिरपेक्षता हिंदू-मुस्लिम एकता तोड़ने की साजिश है। दरअसल छह साल पहले दो नेपाली युवकों को बुटवल में पुराने राष्ट्रगान को गाने की वजह से पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया था। इसके बाद से ही पूरे नेपाल में इस राष्ट्रगान को गाने का सिलसिला चलने के साथ हिंदू राज की पुर्नस्थापना की मांग उठ रही है।

हिमालय की गोद में बसा नेपाल एक छोटा और सुंदर देश है। पूरी दुनिया में नेपाल ही एकमात्र ऐसा देश है, जिसे आज तक कोई दूसरा देश परतंत्र नहीं बना पाया।

इसलिए यहां स्वतंत्रता दिवस नहीं मनाया जाता। किंतु चीन के लगातार बढ़ रहे हस्तक्षेप के चलते लोगों को लगने लगा है कि कहीं यह हिंदू धर्मावलंबी देश अपनी मौलिक संस्कृति व स्वतंत्रता न खो देश नेपाल एक दक्षिण एशियाई देश है। नेपाल के उत्तर में चीन का स्वायत्तशासी प्रदेश तिब्बत है। जिसे चीन निगलता जा रहा है। दक्षिण पूर्व व पश्चिम में भारत की सीमा लगती है। नेपाल की 85.5 प्रतिशत आबादी हिंदू है, इसलिए वह प्रतिशत के आधार पर सबसे बड़ा हिंदू धर्मावलंबी देश है। नेपाल में लंबे समय तक राजशाही रही है। किंतु राजशाही के खूनी दुखद अंत के बाद यहां माओवादी नेता प्रचंड के प्रधानमंत्री बनने से सामंतशाही सिमटती चली गई और 18 मई 2006 को राजा के अधिकारों में कटौती कर नेपाल को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित कर माओवादी लोकतंत्र की शुरूआत हो गई। तभी से चीनी हस्तक्षेप के चलते यहां के मूल स्वरूप को बदलने के अलावा भारत के साथ संबंध खराब होने की शुरूआत भी हो गई थी। प्रधानमंत्री केपी शर्मा ओली ने चीन के दबाव में न केवल भारत से शत्रु तापूर्ण संबंधों की बुनियाद रखी,,बल्कि चीनी सेना को खुली छूट देकर अपनी जमीन भी खोना शुरूकर दी। जाहिर है, नेपाल में लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना तो हो गई,, लेकिन लचर नेतृत्व के चलते यह देश अपना अस्तित्व खोने की कगार पर आ खड़ा हुआ है।

हमारे पड़ोसी देशों में नेपाल और भूटान ऐसे देश हैं, जिनके साथ हमारे संबंध विश्वास और स्थिरता के रहे हैं। यही वजह है कि भारत और नेपाल के बीच 1950 में हुई सुलह, शांति और दोस्ती की संधि आज भी कायम है। नेपाल और भूटान से जुड़ी 1850 किमी लंबी सीमा रेखा बिना किसी पुख्ता पहरेदारी के खुली है। बावजूद चीन, पाकिस्तान और बांग्लादेश की तरह कोई

विवाद नहीं है। बिना पारपत्र के आवाजाही निरंतर जारी है। करीब 60 लाख नेपाली भारत में काम करके रोजी-रोटी कमा रहे हैं। 3000 नेपाली छात्रों को भारत हर साल छात्रवृत्ति देता है। नेपाल के विदेशी निवेश में भी अब तक का सबसे बड़ा 47 प्रतिशत हिस्सा भारत का है। बावजूद यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि नेपाल का झुकाव चीन की ओर बढ़ता चला गया। हालांकि नरेंद्र मोदी ने अगस्त 2014 में नेपाल की यात्रा करके बिगड़ते संबंधों को आत्मीय बनाने की सार्थक पहल की थी, किंतु भारतीय मूल के मधेशियों के आंदोलन ने इस पर पानी फेर दिया था।

अब नेपाल और चीन के बीच द्विपक्षीय संबंधों के तहत ऐतिहासिक पारगमन व्यापार समझौते समेत 10 समझौतों की शुरूआत करके नेपाल ने चीन से रिश्ते मजबूत कर लिए थे। चीन और नेपाल के बीच तिब्बत के रास्ते रेलमार्ग बनाने पर भी संधि हुई है। चीन ने काठमांडू से करीब 200 किमी दूर पोखरा में क्षेत्रीय हवाई अड्डा निर्माण के लिए नेपाल को 21000 डॉलर का सस्ती ब्याज दर पर ऋण दिया है। मुक्त व्यापार समझौते पर भी हस्ताक्षर हुए हैं। नेपाल में तेल और गैस की खोज करने पर भी चीन सहमत हुआ है। इसके लिए वह नेपाल को आर्थिक और तकनीकि मदद देने को राजी हो गया है। चीन ने नेपाल में अपने व्यावसायिक बैंक की शाखाएं भी खोल दी हैं। नेपाली बैंक भी अपनी शाखाएं चीन में खोल रहे हैं। संस्कृति, शिक्षा और पर्यटन जैसे मुद्दों पर भी चीन का दखल नेपाल में बढ़ गया है।

अर्से से इन्हीं कुटिल कूटनीतिक चालों के चलते कम्युनिष्ट विचारधारा के पोषक चीन ने माओवादी नेपालियों को अपनी गिरफ्त में लिया और नेपाल के हिंदू राष्ट्र होने के संवैधानिक प्रावधान को खत्म करके प्रचंड को प्रधानमंत्री बनवा दिया था। चीन नेपाल की पाठशालाओं में चीनी अध्यापकों से चीनी भाषा मंदारिन की मुफ्त में शिक्षा नेपाली नागरिकों को दे रहा है। इन पाठशालाओं की संख्या 50 से भी ज्यादा है। चीन इस प्रयास के बहाने नेपाल की सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक संबंधों का नया इतिहास गढ़ने में लगा है। ऐसे में नेपाल में हिंदु राष्ट्र की मांग उठना न केवल नेपाल के हित में है, बल्कि भारत के हित में भी है।

सत्ता पर सिब्बल का कड़ा प्रहार

सनत जैन

सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठ अधिवक्ता एवं राज्यसभा सांसद पूर्व केंद्रीय मंत्री कपिल सिब्बल ने एक इंटरव्यू लिया। जो यूट्यूब पर चल रहा है। इस इंटरव्यू में उन्होंने राज्यसभा के सांसद संजय सिंह जो मनी लांड्रिंग के आरोप में 183 दिन जेल में बंद रहे। ईड़ी के आरोपी साकेत गोखले भी 157 दिन तक जेल में बंद रहकर जमानत पर बाहर हैं। इसके अलावा प्रियंका चतुर्वेदी राज्यसभा की सदस्य और शिवसेना उद्धव ठाकरे गुट की प्रवक्ता हैं। ईडी के अधिकारियों ने संजय सिंह और साकेत गोखले से किस तरह के सवाल जवाब किये। उनके उपर क्या आरोप थे। इन्हें इतने लंबे समय तक जमानत क्यों नहीं मिली। ट्रायल कोर्ट से लेकर हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट की भूमिका को लेकर भी चर्चा की गई। जेल में किस तरह का व्यवहार किया गया। इस पूरे इंटरव्यू में ईडी के अधिकारियों की मनमानी, सबूत जुटाने के नाम से कई महीनों और वर्षों तक जेल में बंद रखने के संबंध में चर्चा की गई। ट्रायल कोर्ट में आरोपियों की बात नहीं सुने जाने, ईडी द्वारा पूछताछ के दौरान शारीरिक

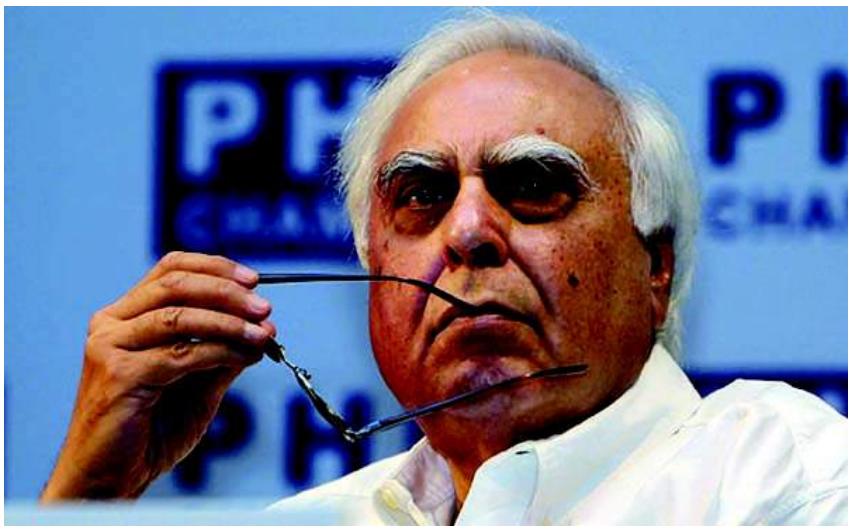

और मानसिक प्रताड़ना, जेल में अमानवीय व्यवहार को लेकर इस इंटरव्यू में संजय सिंह और साकेत गोखले ने पूरा सच बताया। सबसे बड़ी बात यह है कि कानून के सबसे बड़े जानकार, कपिल सिब्बल द्वारा यह इंटरव्यू प्रायोजित किया गया था। ईडी से संबंधित मामले हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट में वह अपने मुवक्किल के लिए पैरवी भी कर रहे हैं। जो कई महीनो से जेल में बंद है। ईडी

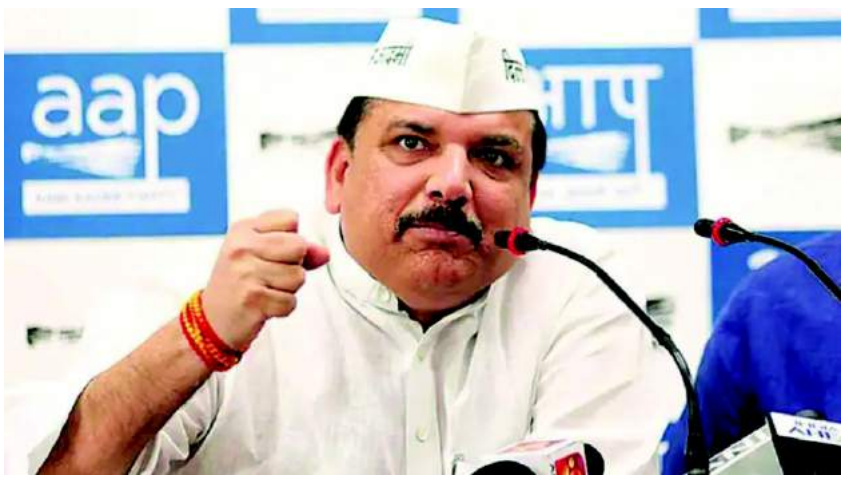

गैर कानूनी ढंग से उन्हें हिरासत में रख पा रही है, तो हिरासत से रिहा कराने की जिम्मेदारी अधिवक्ता की ही होती है। संजय सिंह ने अपनी गिरफ्तारी को लेकर कोई बात नहीं की। जमानत की शर्तों में उन्हें अपने केस से संबंधित बात करने पर प्रतिबंध लगाया गया है। संजय सिंह ने दिल्ली सरकार के पूर्व मंत्री सत्येंद्र जैन, उपमुख्यमंत्री मनीष सिसोदिया और मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल को लेकर जरूर तथ्य सामने रखे। उन्होंने यह भी कहा, कि सैकड़ों छापे डालने के बाद ईडी की कस्टडी और ज्यूडिशरी कस्टडी में कई माह से बंद होने के बाद भी ईडी कोई सबूत नहीं जुटा पाई। किस तरह से ईडी के अधिकारी विपक्षी दल के नेता को प्रताड़ित कर रहे हैं। सुप्रीम कोर्ट के आदेश से जो जानकारी सामने आई है। उससे भी स्पष्ट हो गया है। जिस व्यक्ति के बयान पर अरविंद केजरीवाल और मनीष सिसोदिया को बंद रखा गया है। उसने भाजपा को करोड़ों रूपये का चंदा दिया है। शराब घोटाले का मनी ट्रेल

उजागर होने के बाद भी शराब घोटाले की जांच ईडी के अधिकारी नहीं कर रहे हैं। ट्रायल कोर्ट में आरोपियों के बयान नहीं सुने जा रहे है। ट्रायल कोर्ट, ईड़ी के आवेदन पर ही ध्यान देकर निर्णय करती है।

वरिष्ठ अधिवक्ता कपिल सिब्बल द्वारा माननीय जजों के सामने असहाय होने की बात स्वीकार की। साक्षात्कार में कहा गया कि संसद में सांसदों को बोलने का अवसर नहीं दिया जाता है। सुप्रीम कोर्ट के निर्णय सरकार द्वारा बदल दिए जाते हैं। दिल्ली सरकार के बारे में जो फैसला सुप्रीम कोर्ट की पीठ ने दिया था, उसे सरकार ने अध्यादेश लाकर बदल दिया। मीडिया, सरकार जो कहती है, वही दिखाती है। देश में लोकतंत्र पूरी तरह से खत्म हो गया है। पूर्व कानून मंत्री और वरिष्ठ वकील इन मामलों की पैरवी हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट में स्वयं कर रहे हैं। उसके बाद भी न्याय दिलाने में असमर्थता जताते हुए जिस तरह से अपना पल्ला झाड़तें हैं, यह चिंता का विषय है। संविधान और लोकतांत्रिक व्यवस्था के अनुसार बनाए गए नियम और कानूनों के अनुसार काम हो रहा है, या नहीं? संविधान ने इसका दायित्व न्यायपालिका को दिया है। जजों के साथ-साथ अधिवक्ता भी न्याय पालिका के अंग होते हैं। जजों के सामने इन्हें अपनी बात अच्छे तरीके से रखना होती है। यदि कोई जज निष्पक्षता से काम नहीं कर रहा है, उनके कामकाज को लेकर ट्रायल कोर्ट के जजों की शिकायत हाईकोर्ट में प्रशासनिक जज से की जा सकती है। यदि कोई हाईकोर्ट के जज न्यायिक प्रक्रिया का पालन नहीं कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में इनकी शिकायत सुप्रीम कोर्ट में भी की जा सकती है। न्यायाधीशों की शिकायतों पर गौर करने का काम प्रशासनिक जज और कॉलेजियम का होता है, लेकिन लगता है, हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठ अधिवक्ता भी न्यायालय के सामने अपनी सही बात कहने से डरने लगे हैं। शायद उन्हें ऐसा लगता होगा, यदि न्यायालय ने उनके बारे में गलत धारणा बना ली, तो उनकी प्रैक्टिस पर इसका हो सकता है। शायद यही सबसे बड़ा कारण है, न्यायपालिका के उपर, नियम कानून और प्रक्रिया को लेकर जो दबाव होता था, वह डर के मारे खत्म हो चुका है। इस कारण न्यायपालिका पूरी तरह से सरकार के दबाव में काम करती हुई दिख रही है। 80 फीसदी मामले सरकार के खिलाफ होते हैं। जब संसद सदस्य, मुख्यमंत्री और मंत्रियों को न्यायपालिका से न्याय नहीं मिल पा रहा है। ऐसी स्थिति में आम आदमी की क्या हालत होती होगी। इसका सहज अंदाजा लगाया जा सकता है। यूट्यूब में कपिल सिब्बल के इस साक्षात्कार को देखकर ऐसा ही लगता है।

भारत से लोकतंत्र और न्याय व्यवस्था लगभग समाप्त हो चुकी है। सरकार जो चाहती है, न्यायपालिका भी दबाव में एक तरह से उसकी मदद करने का काम कर रही है। अब तो यह भी कहा जाने लगा है कि जिस तरह से रावण-राम युद्ध के समय सभी ग्रह रावण की कैद में थे। रावण को भरोसा था, जब सारे ग्रह मेरी कैद मे हैं, तब वनवासी राम मेरा क्या अहित कर सकता है। लगभग यही स्थिति वर्तमान समय में भारत के संविधान और लोकतंत्र बचाने की लड़ाई में दिख रही है। सारी संवैधानिक संस्थाएं सरकार के नियंत्रण और दबाव में काम कर रही हैं। न्यायपालिका भी उससे अछूती नहीं रही। ऐसी स्थिति में संविधान और लोकतंत्र का भगवान ही मालिक है। डर और भय के इस वातावरण में राहुल गांधी जरूर पिछले 1 वर्ष से लड़ाई लड़ने की कोशिश कर रहे हैं। विपक्षी दलों का गठबंधन भी बना है। लोकसभा का चुनाव एकजुट होकर लड़ रहा है। 2024 का लोकसभा चुनाव तय करेगा। भविष्य में संविधान और लोकतांत्रिक व्यवस्थाएं सुरक्षित रहेंगी या नहीं।

लोकसभा चुनाव 2024

ये कैसी राजनीति, कैसा चुनाव प्रचार

मुस्ताअली बोहरा

लोकसभा 2024 का चुनाव अब आम जनता की बुनियादी जरूरतों और सरकार की जवाबदेही से हटकर बेमानी बयानों और आरोप-प्रत्यारोपों पर आ गया है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने राजस्थान की एक जनसभा में कांग्रेस पर निशाना साधते हुए अपने भाषण में मंगलसूत्र का जिक्र किया था। इसके बाद से भाजपा, कांग्रेस, सपा और अन्य राजनीतिक दलों ने मंगलसूत्र को आधार बनाते हुए टीका टिप्पणी शुरू कर दी है। मोदी जी ने अपने भाषणों में कांग्रेस पर निशाना साधते हुए कहा कि नौकरीपेशा लोगों के कमाए हुए धन और जमीन-मकान का भी सर्वे कराया जाएगा। यदि आपके पास दो घर हैं, तो एक घर छीन लिया जाएगा और उसे ज्यादा बच्चों वालों में बांट दिया जाएगा। कांग्रेस की यह नक्सलवादी सोच उसके चुनाव घोषणा-पत्र में साफ दिखती है। क्या आप ऐसी सरकार बनने देंगे? देश के आर्थिक संसाधनों पर शहरी नक्सलियों का कब्जा होगा। आखिर मोदी जी ने ये किस आधार पर कहा है कि हिंदू माताओं-बहनों के मंगलसूत्र तक बांट दिए जाएंगे? मोदी जी ने डॉ. मनमोहन सिंह के 9 दिसंबर, 2006 को राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक में दिए गए बयान की व्याख्या की है लेकिन ऐसा कुछ है नहीं जो मोदी जी ने कहा। तब तत्कालीन पीएम मनमोहन सिंह ने नई योजनाओं के संदर्भ में दलित, आदिवासी, ओबीसी, महिलाओं और बच्चों के साथ ही मुस्लिम अल्पसंख्यकों की भी बात कही थी। ये सभी जानते हैं कि संसाधनों पर किसी एक तबके या समुदाय का पहला हक नहीं हो सकता। यही वजह है कि तब मनमोहन सिंह के बयान की भी तीखी आलोचना की गई थी। एक बड़े मतदाता वर्ग को लुभाने के लिए दूसरे समुदाय को टारगेट करना, मोदी जी के सबका साथ-सबका विकास के दावे को झुठलाते नजर आते हैं। कांग्रेस के चुनाव घोषणा-पत्र में ऐसा कोई भी वायदा नहीं है, जैसा प्रधानमंत्री ने बताया है। मंगलसूत्र छीनने और बांटने

आखिर मोदी जी ने ये किस आधार पर कहा है कि हिंदू माताओं-बहनों के मंगलसूत्र तक बांट दिए जाएंगे?

की भी घोषणा नहीं की गई है। ये जरूर है कि जातीय जनगणना, जातियों-उपजातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का पता लगाने, मुसलमानों के सशक्तिकरण, सर्वे के आधार पर भागीदारी और अधिकार तय करने की बात घोषणा-पत्र में है। कांग्रेस नेता राहुल गांधी ने हैदराबाद की रैली में कहा था कि यह आर्थिक सर्वे भी कराया जाएगा कि किस वर्ग के पास कितना धन है। इसमें मां-बहनों के मंगलसूत्र और गहने कहां से आ गए? कांग्रेस के घोषणा पत्र को लेकर मोदी जी ने जो व्याख्या की और उसका अपने भाषणों में जिक्र किया है उससे उसे भाजपा को घेरने का मौका मिल गया है। कांग्रेस अध्यक्ष मल्लिकार्जुन खड़गे ने कहा कि वो कांग्रेस के घोषणा पत्र की ब्यौरा विस्तार से बताएंगे साथ ही प्रधानमंत्री से पूछेंगे कि जो आप कह रहे हैं वो कहां लिखा है। जो भी हो संपत्ति बटवारे, सोने-चांदी के गहने और मंगलसूत्र को लेकर सियासत तेज हो गई है। मोदी के बयान पर विपक्ष के नेताओं ने तीखी टिप्पणी की है। सपा अध्यक्ष अखिलेश यादव ने कहा है कि पीएम मोदी और यूपी के सीएम योगी आदित्यनाथ को मंगलसूत्र से क्या लेना देना है। कांग्रेस नेत्री प्रियंका गांधी ने मोदी के बयान पर पलटवार करते हुए कहा है कि पिछले करीब 70 सालों में 5 दशक से ज्यादा समय तक कांग्रेस की सरकार रही तब क्या किसी ने आपका सोना छीना और आपके मंगलसूत्र छीने। प्रियंका ने ये भी कहा कि जब देश में जंग हुई थी तब इंदिरा गांधी ने अपना सोना देश को दिया था और मेरी मांग का मंगलसूत्र यानि राजीव गांधी देश पर कुर्बान हुए हैं। प्रियंका ने कहा कि जब सैकड़ों किसानों की जानें गईं तो क्या मोदी जी ने उन विधवाओं के मंगलसूत्र के बारे में सोचा। जब मणिपुर में महिला को नग्न घुमाया गया तब उन्होंने उनके मंगलसूत्र के बारे में सोचा। इसी तरह तेजस्वी यादव ने सवाल किया कि माताओं-बहनों का सुहाग कौन छीन रहा है। चीन के हमले में सेना के जवान शहीद हुए तो सुहान किसने छीना। पुलवामा में जिन जवानों ने शहादत दी तो सुहाग किसने छीना। किसान आंदोलन में किसानों ने शहादत दी तो सुहाग किसने छीना। बेरोजगादी, गलत कृषि नीति और बदहाल अर्थव्यवस्था के कारण किसान, व्यापारी और युवाओं ने आत्महत्याएं कीं तो सुहान किसने छीना। 2014 में दस ग्राम सोना 24 हजार का था और 73 हजार रूपए का हो गया, माताएं-बहनें आज नया मंगलसूत्र भी नहीं बनवा सकतीं। तेजस्वी यादव ने कहा कि मोदी जी इधर-उधर की छोड़िए बात बेरोजगारी, मंहगाई और बदहाल अर्थव्यवस्था की कीजिए। खैर, बात मोदी जी के भाषणों की तो पहले चरण के बाद जिस तरह से मोदी जी ने अपने भाषणों का रूख बदला है उससे ये महसूस हो रहा है कि पार्टी अपने पुराने हिंदुत्व के एजेंडे पर लौट रही है। मोदी जी ने जिस तरह से ज्यादा बच्चे, घुसपैठिए, मंगलसूत्र, सोने-चांदी के गहनों को छीनकर ज्यादा बच्चे वालों को बांटने आदि के बयानों ने वोटों के धुरवीकरण की कोशिश की है उससे एक बड़ा वर्ग हतप्रभ है।

जन-जन से जुड़ा जल-संकट

जल-संकट से जूझती दुनिया की आधी आबादी

विजया पाठक

लोगों को स्वच्छ पेयजल मुहैया कराना किसी भी सरकार की प्राथमिक जिम्मेदारी होती है, लेकिन हमारी सरकारें इस दायित्वों से कब की पल्ला झाड़ चुकी है। दुनिया की करीब 17 प्रतिशत जनसंख्या भारत में रहती है, जबकि इसका भू-भाग है सिर्फ 4 प्रतिशत फीसदी। हमारी प्रति व्यक्ति पेयजल उपलब्धता की स्थिति चिंताजनक है। 1951 में जब देश की आबादी 36 करोड़ी थी, तब प्रति व्यक्ति 5177 घनमीटर पेयजल उपलब्ध था। 2011 में आबादी बढ़कर 1.21 अरब हो गई, जबकि पेयजल की उपलब्धता घटकर 1150 घनमीटर रह गई। पिछले 60 साल में प्रति व्यक्ति पानी की खपत में 70 फीसदी कटौती हो चुकी है। देश में उपलब्ध पानी का 89 प्रतिशत हिस्सा खेती में खप जाता है। शेष बचे जल में से 6 प्रतिशत उद्योगों के और 5 प्रतिशत पीने के काम आता है। औद्यौगिक कचरे ओर खेती में रासायनिक खाद्य के अंधाधुंध इस्तेमाल से अधिकतर जल स्त्रोत प्रदूषित हैं। नदियों में इतना जहर घुल चुका है कि उनका पानी नहाने योग्य भी नही रहा।

संसार का प्रत्येक जीवधारी, प्रत्येक प्राणी जल का तलबगार है। शायद यही कारण है कि प्राचीन शास्त्र-ग्रन्थों में जल को जीवन कहा गया है। जल हमारे लिए ईश्वर का सबसे बड़ा वरदान जल, जो हमें वर्षा, पर्वतों के झरनों, धरती के स्त्रोतों, नदियों, तालों, कूपों, बावडियों, पोखरों, तालाबों और समुद्रों आदि से प्राप्त होता है। किन्तु हमारी स्वार्थपरता और हमारे वैज्ञानिक प्रयोगों ने इस युग में जल को हमारे लिए दुर्लभ-सा कर दिया है। वह दिनोंदिन और भी दुर्लभ होता जा रहा है।

जल संकट देश ही नहीं, समूचे विश्व की गंभीर समस्या है। दुनिया के विशेषज्ञों की राय है कि वर्षा जल संरक्षण को बढ़ावा देकर गिरते भू-जल स्तर को रोका जा सकता है। टिकाऊ विकास का यही आधार हो सकता है। इसमे दो राय नहीं कि जल संकट ही आने वाले समय की सबसे बड़ी चुनौती है, जिस पर गौर करना आज की

सबसे बड़ी जरूरत है। वरना, स्थिति इतनी भयावह होगी कि उसका मुकाबला कर पाना असंभव होगा। लिहाजा, जल-प्रबंधन पर ध्यान दिया जाना बेहद जरूरी है। भू-जल पानी का महत्वपूर्ण स्रोत है और पृथ्वी पर होने वाली जलापूर्ति अधिकतर भू-जल पर ही निर्भर है, लेकिन आज इसका दोहन हुआ है। इसी का नतीजा भू-जल के

ब्रजक्षेत्र के आगरा की घटनाएं इसका प्रमाण हैं। ये घटनाएं संकेत देती हैं कि भविष्य में स्थिति कितनी विकराल रूप धारण कर सकती है। वैज्ञानिकों व भू-गर्भ विशेषज्ञों का मानना है कि बुंदेलखंड, अवध, कानपुर, हमीरपुर व इटावा की ये घटनाएं भू-जल के अत्याधिक दोहन का परिणाम हैं। यह भयावह खतरे का संकेत

है, जब ग्रामीण-शहरी दोनों जगह पानी का दोहन नियंत्रित हो। संरक्षण, भंडारण हो, ताकि वह जमीन के अंदर प्रवेश कर सके। जल के अत्याधिक दोहन के लिए कौन जिम्मेवार है? योजना आयोग के अनुसार भू-जल का 8 फीसदी उपयोग कृषि क्षेत्र द्वारा होता है। इसे बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा बिजली पर दी जाने वाली सब्सिडी

लगातार गिरते स्तर के रूप में आज हमारे सामने है। इसीलिए ही जल संकट की भीषण समस्या आ खड़ी हुई है और वातावरण के असंतुलन की भयावह स्थिति पैदा भी हो गयी है। हालात यहां तक खराब हो रहे हैं कि इससे देश में कहीं धरती फट रही है और कहीं जमीन अचानक तप रही है। उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड, अवध व

है, क्योंकि जब-जब पानी का अत्याधिक दोहन होता है, तब जमीन के अंदर के पानी का उत्प्लावन बल कम होने या खत्म होने पर जमीन धंस जाती है और उसमें दरारे पड़ जाती हैं। इसे उसी स्थिति में रोका जा सकता है, जब भू-जल के उत्प्लावन बल को बरकरार रखा जाये। पानी समुचित मात्रा में रिचार्ज होता रहे। यह तभी संभव

जिम्मेदार है। आयोग की रिपोर्ट में सिफारिश की गयी है कि यह सब्सिडी कम की जाये। वह, इस रूप में दी जाये, ताकि किसान भू-जल का उचित उपयोग करें। सब्सिडी के बदले किसान को निश्चित धनराशि नकद दी जाये। इससे भू-जल का संरक्षण होगा तथा विद्युत क्षेत्र पर भी आर्थिक बोझ कम होगा। विश्व बैंक की

मानें तो भू-जल का सर्वाधिक 92 फीसदी उपयोग और सतही जल का 89 फीसदी उपयोग कृषि में होता है। 5 फीसदी भूजल व 2 फीसदी सतही जल उद्योग में, 3 फीसदी भूजल व 9 फीसदी सतही जल घरेलू उपयोग में लाया जाता है।

आजादी के समय देश में प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति पानी की उपलब्धता पांच हजार क्यूबिक मीटर थी, जबकि उस समय आबादी चार सौ मिलियन थी। यह उपलब्धता कम होकर वर्ष 2000 में दो हजार क्यूबिक मीटर रह गयी और आबादी एक हजार मिलियन पार कर गयी। 2025 में यह घटकर 1500 क्यूबिक मीटर रह जायेगी, जबकि आबादी 1390 मिलियन हो जायेगी। यह आंकड़ा 2050 तक 1000 क्यूबिक मीटर ही रह जायेगा और आबादी 1600 मिलियन को पार कर जायेगी। योजना आयोग के मुताबिक देश का 29 फीसदी इलाका पानी की समस्या से जूझ रहा है। वह भले ही जल संकट की सारी जिम्मेदारी कृषि क्षेत्र पर डाले, लेकिन हकीकत यह है कि जल संकट गहराने में उद्योगों की अहम भूमिका है। असल में अधिकाधिक पानी फैक्ट्रियां ही पी रही हैं। विश्व बैंक का मानना है कि कई बार फैक्ट्रियां एक ही बार में उतना पानी जमीन से खींच लेती हैं, जितना एक गांव पूरे महीने में भी नहीं खींच पाता। बहरहाल, पानी ही देश के औद्योगिक प्रतिष्ठानों की रीढ़ है। यदि यह खत्म हो गया, तो सारा विकास धरा का धरा रह जायेगा। सवाल यह उठता है कि जिस देश में भू-जल व सतही विभिन्न साधनों के माध्यम से पानी की उपलब्धता 2300 अरब घनमीटर हो और जहां नदियों का जाल बिछा हो और सालाना औसत वर्षा सौ सेमी से भी अधिक होती है, वहां पानी का अकाल क्यों है? असलियत यह है कि वर्षा से मिलने वाले जल में से 47 फीसदी पानी नदियों में चला जाता है, जो भंडारण-संरक्षण के अभाव में समुद्र में जाकर बेकार हो जाता है। इसे बचाया जा सकता है। इसके लिए वर्षा जल का संरक्षण और उसका उचित प्रबंधन ही एकमात्र रास्ता है। यह तभी संभव है, जब जोंहडों, तालाबों के निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया जाये। पुराने तालाबों को पुनर्जीवित किया जाये। खेतों में सिंचाई हेतु पक्की नालियों का निर्माण किया जाये या पीवीसी पाइप का उपयोग किया जाये। बहाव क्षेत्र में बांध बनाकर पानी को इकट्ठा किया जाये, ताकि वह समुद्र में बेकार न जा सके। बोरिंग-ट्यूबवैल पर नियंत्रण लगाया जाये। उन पर भारी कर लगाया जाये,

ताकि पानी की बर्बादी रोकी जा सके। जरूरी यह भी है कि पानी की उपलब्धता के गणित को शासन व समाज समझे। यह आमजन की जागरूकता-सहभागिता से ही संभव है, अन्यथा नहीं। भू-जल संरक्षण की खातिर देशव्यापी अभियान चलाया जाना अति आवश्यक है, ताकि भूजल का समुचित नियमन हो सके। भू-जल के 80 फीसदी हिस्से का इस्तेमाल तो हम कर ही चुके हैं और इसके बाद भी उसके दोहन का काम जारी है। हम यह नहीं सोचते कि जब यह नहीं मिलेगा, तब क्या होगा? यह भी सच है कि इस चुनौती का सामना अकेले सरकार के बस की बात नहीं है। यह आम आदमी के सहयोग से ही होगा। भारतीय संस्कृति में जल को जीवन का आधार माना गया है और इसी दृष्टिकोण के तहत इसे हमेशा से सहेजने की परंपरा रही है।

विडंबना यह है कि पानी के मामले में इतने भयावह हालात होने पर भी न हम और न हमारी सरकार स्थिति को गंभीरता से नहीं ले रही है। वह गेंद को राज्यों के पाले में फेंक कर अपना कर्तव्य निभा देती है, जबकि राज्यों की उदासीनता जग-जाहिर है।

आज जल संकट की जो स्थिति बनी हुई है ऐसे में सरकार का यह दायित्व है कि वह जल के प्रति ऐसी नीति लाए जो लोगों को स्वच्छ और सुरक्षित पेयजल का मौलिक अधिकार दे। क्योंकि यह सर्वविदित है कि जल मानव को जीवित रखने के लिए ऑक्सीजन के बाद सबसे अहम तत्व है। ऐसे में यदि सरकार खाद्य सुरक्षा की तरह स्वच्छ और सुरक्षित पेयजल का अधिकार सभी नागरिकों को दे तो यह न केवल लोगों के लिए सबसे कल्याणकारी कदम होगा बल्कि इसके साथ संविधान के अनुच्छेद 21 में वर्णित गरिमामय जीवन जीने के अधिकार का क्रियान्वयन भी हो सकेगा। आज विश्व भर में स्वच्छ पेयजल के संकट की स्थिति बनी हुई है। भारत जैसे विकासशील देश इस समस्या से सर्वाधिक प्रभावित हैं। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति तो और भी जटिल और भयावह है। एक आँकड़े के मुताबिक आज देश की करीब 85 फीसदी ग्रामीण आबादी को स्वच्छ पेयजल नहीं मिल पाता है। अधिकांश राज्यों में भू-जल का प्रयोग पेयजल के रूप में किया जाता है जोकि आज विभिन्न प्रकार की बीमारियों की वजह बनी हुई है। भू-जल में आर्सेनिक, फ्लोराइड, यूरेनियम जैसे खतरनाक रसायन मिले हुए हैं। इसके कारण होने वाले रोगों से भारतीय ग्रामीण आबादी बुरी

तरह प्रभावित है। दूषित जल के सेवन से पक्षाघात पोलियो, पीलिया, मियादी बुखार, हैजा, डायरिया, क्षयरोग, पेचिश, इन्सेफ्लाईटिस जैसे खतरनाक रोग फैलते हैं और यह सब बीमारियाँ ग्रामीण क्षेत्रों में महामारी का रूप धारण करती हैं। देश के ग्रामीण क्षेत्रों में आम जनता को यह तक पता नहीं होता कि जो पानी वे पी रहे हैं वह स्वच्छ है कि नहीं। कई जगहों पर आज भी तालाबों, कुओं का जल पीने के काम में प्रयुक्त होता है।वर्तमान में बोतलबन्द पानी तथा वाटर प्यूरीफायर कम्पनियों की तादाद बढ़ती जा रही है। यह न केवल शहरों तक सीमित है वरन ग्रामीण इलाकों में भी इनकी अच्छी पहुँच हो गई है। इसका एकमात्र कारण पानी का दूषित होना और स्वच्छ जल तक सबकी पहुँच का अभाव है। जलजनित बीमारियाँ अशुद्ध पेयजल वाले क्षेत्रों में उत्पन्न होती है। भात में गाँवों और शहरी बस्तियों में शौचालयों की कमी तथा खराब सफाई व्यवस्था के कारण आधी से ज्यादा आबादी खुले स्थान पर शौच करती है। एक अनुमान के मुताबिक यदि स्वच्छ पेयजल और बेहतर सफाई व्यवस्था मुहैया कराई जाए, तो प्रत्येक 20 सेकंड में एक बच्चे की जान बचायी जा सकती है। इन आधारभूत सुविधाओं में सुधार कर रूग्णता और बीमारियों को 80 फीसदी तक कम किया जा सकता है। साथ ही तेजी से बढ़ती शिशु मृत्युदर को तेजी से घटाया जा सकता है।

वैश्विक स्तर पर भी देखें तो सम्पूर्ण विश्व में लगभग दो अरब लोग दूषित जलजनित रोगों की चपेट में हैं। इसके अलावा प्रतिवर्ष लगभग 50 लाख लोग गन्दे पानी के इस्तेमाल के कारण मौत के मुँह में समा जाते है। सम्पूर्ण विश्व में हर वर्ष मरने वाले बच्चों में लगभग 60 प्रतिशत बच्चे जल से पैदा होने वाले रोगों के कारण मरते हैं। बढ़ती आबादी और पानी की बढ़ती खपत के कारण निरन्तर सुरक्षित पेयजल की सतत आपूर्ति आज एक

वैश्विक चुनौती बनती जा रही है। विभिन्न आँकड़ों पर गौर करें तो जल संकट की स्थिति अत्यन्त भयावह प्रतीत होगी। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट के मुताबिक विश्व की 6 अरब आबादी में हर छठा व्यक्ति नियमित और सुरक्षित पेयजल की आपूर्ति से वंचित है।

ग्लोबल एनवायरन्मेंट आउटलुक के अनुसार 2032 तक दुनिया की आधी से अधिक आबादी पानी की अत्यधिक कमी वाले क्षेत्रों में रहने को विवश होगी। एक अनुमान के मुताबिक विश्व की कुल जनसंख्या के 1.1 अरब लोग जलापूर्ति और 2.4 अरब लोग स्वच्छता की सुविधा से वंचित हैं। पिछली सदी में विश्व जनसंख्या तीन गुना बढ़ी है। और इस दौरान पानी की खपत में भी 6 गुणा बढ़ोत्तरी हुई है। अनुमान है कि 2050 तक संसार का हर चौथा व्यक्ति पानी की कमी से ग्रस्त होगा। यह वास्तविकता है कि जीने के लिए आवश्यक इस समिति जल संसाधन का केवल 0.8 प्रतिशत ही पीने योग्य है। पृथ्वी पर उपलब्ध कुल जल का 97.4 प्रतिशत पानी समुद्रों में जमा है जो कि मानव के पीने योग्य नहीं है। बाकी बचा 1.8 प्रतिशत जल बर्फ के रूप में जमा है।

सुरक्षित पेय जलापूर्ति के प्रति वैश्विक प्रयास

स्वच्छ पेय जलापूर्ति एक वैश्विक समस्या है और इसी कारण अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर इसका समाधान निकाला जाना चाहिए। भारत सहित तमाम देश जल के प्रति सचेत, जागरूक व चिन्तित हैं। इसका एकमात्र कारण यह है कि जीवन के लिए महत्वपूर्ण इस सीमित संसाधन का वर्तमान में गलत तरीके से दोहन के कारण इसकी मात्रा में निरन्तर कमी आती जा रही है। जल संकट की इस वैश्विक स्थिति में सबसे बड़ी समस्या यह है कि जल की बर्बादी के प्रति आज आम जन जागरूक नहीं है। इससे कई तरह की गम्भीर समस्याएँ पैदा हो सकती हैं। जल संरक्षण की दिशा में संयुक्त राष्ट्र संघ ने 2005 से 2015 तक के दशक को एक्शन के लिए **अन्तरराष्ट्रीय दशक** घोषित किया है, जिसकी थीम है **जीवन के लिए जल**। पिछले 30 वर्षो में स्टॉकहोम (1972) से रियो (1992) और जोहानिसबर्ग (2002)

तक के पृथ्वी सम्मेलनों में हर बार जल संकट का मुद्दा केन्द्र में रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने जल दशक के बहाने जल संकट के विश्वव्यापी मुद्दे पर ध्यान दिया है जो कि सराहनीय पहल है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के दिशा-निर्देश

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने जन स्वास्थ्य की सुरक्षा के अपने प्राथमिक लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए पेयजल गुणवत्ता पर विस्तृत दिशा-निर्देश जारी किए हैं। इस सन्दर्भ में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 1984 और 1985 में इस दिशा-निर्देश का पहला अंक तीन खण्डों में प्रकाशित किया। इसके बाद इसमें संशोधन करके आगे भी प्रकाशित किया जाता रहा है। इन निर्देशों को विश्व के तमाम देशों ने विस्तृत रूप में इसे अपने नागरिकों के पेय जलापूर्ति की सुरक्षा के राष्ट्रीय मानक के रूप में निर्धारित किया है। इन निर्देशों में पेयजल गुणवत्ता, स्वास्थ्य व पर्यावरण सुरक्षा पर ध्यान दिया गया है। जल में अवांछनीय तत्वों की उपस्थिति की मात्रा के सन्दर्भ में विश्व स्वास्थ्य संगठन के नवीनतम दिशा-निर्देशों (1993) के अनुसार आर्सेनिक की जल में उपस्थिति की जो मात्रा तय की गई है वह 0.01 मि.ग्रा.प्रति लीटर है, जिसे बहुत से देशों ने मानक के रूप में स्वीकारा है। हालाँकि विश्व स्वास्थ्य संगठन के ये मानक अनिवार्य नहीं हैं, बल्कि यह मात्रा से देशों के अपने-अपने प्राधिकरण द्वारा अपने क्षेत्रीय पर्यावरण, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थिति के अनुरूप निर्धारित करते हैं।

ग्रामीण भारत में सुरक्षित जलापूर्ति

ग्रामीण जलापूर्ति पारम्परिक रूप से गाँवों में सुरक्षित और गुणवत्तापूर्ण जल आपूर्ति पर केन्द्रित है। ग्रामीण पेय जलापूर्ति राज्य का विषय है जिसे संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में शामिल किया गया है। केन्द्र सरकार इस विषय पर नीति और दिशा-निर्देश निर्माण के साथ सहायता करती है। साथ ही इसके अलावा केन्द्र सरकार राज्यों को तकनीकी और केन्द्र प्रायोजित योजनाओं के लिए वित्तीय सहायता भी देती है। केन्द्रीय पेयजल और स्वास्थ्य मंत्रालय का यह दायित्व है कि वह सुनिश्चित करे कि सभी ग्रामीण बस्तियों में सुरक्षित जलापूर्ति हो। मंत्रालय इस दिशा में राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम के

माध्यम से राज्यों की सभी ग्रामीण बस्तियों को पेय जलापूर्ति के लिए सहायता प्रदान कर रहा है। इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम को फ्लैगशिप कार्यक्रम के रूप में शामिल किया गया है। केन्द्र सरकार द्वारा 1972-73 से सभी राज्यों व केन्द्रशासित प्रदेशों को शत-प्रतिशत केन्द्रीय अनुदान दिया जा रहा है।

इसके साथ ही 73वां संविधान संशोधन जो पंचायतों के सशक्तीकरण का आधार स्तम्भ बना, उसे भी पेय जलापूर्ति का दायित्व सौंपा गया है। वर्तमान में राज्य अपने स्टेट पब्लिक हेल्थ इंजीनियरिंग डिपार्टमेंट के माध्यम से जलापूर्ति के लिए योजना, स्वरूप निर्माण के साथ क्रियान्वयन कर रहे हैं। 1986 में राष्ट्रीय पेयजल मिशन के नाम से पेयजल प्रबंधन से सम्बंधित पेयजल प्रौद्योगिकी मिशन प्रारम्भ किया गया और उसी समय ग्रामीण पेय जलापूर्ति से सम्बंधित सम्पूर्ण कार्यक्रम को मिशन का दृष्टिकोण दिया गया। 1991 में राष्ट्रीय पेयजल मिशन का नाम बदल कर राजीव गाँधी **राष्ट्रीय पेयजल मिशन** किया गया तथा 1991 में पेयजल आपूर्ति विभाग बनाया गया। इस दिशा में एक बड़ा और जरूरी कदम उठाते हुए 2011 में एक अलग मंत्रालय के रूप में पेयजल और स्वच्छता मंत्रालय बनाया गया।

भारत निर्माण -ग्रामीण पेयजल

गाँवों में बुनियादी ढाँचे के निर्माण के लिए भारत सरकार ने वर्ष 2005 में भारत निर्माण कार्यक्रम की शुरूआत की थी। भारत निर्माण के छह अंगों में से एक अंग ग्रामीण पेयजल भी था। इसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में शुद्ध पेयजल की सुविधा उपलब्ध कराना है। योजना का लक्ष्य 55067 पेयजल सुविधा से रहित गाँवों तथा 3.31 लाख विकासाधीन क्षेत्रों को पेयजल की सुविधा उपलब्ध कराना है। इस योजना का उद्देश्य कम गुणवत्ता युक्त जलापूर्ति वाले 2.17 लाख क्षेत्रों को उच्च गुणवत्ता वाला जल उपलब्ध कराना भी है। इसके साथ ही जल की खराब गुणवत्ता से निपटने के लिए सरकार ने वरीयता क्रम में आर्सेनिक और फ्लोराइड प्रभावित बस्तियों को ऊपर रखा है। इसके बाद लोहे, खारेपन, नाइट्रेट और अन्य तत्वों से प्रभावित जल की समस्या से निपटने का लक्ष्य बनाया गया है। इस योजना के तहत जल स्रोतों के संरक्षण के प्रति विशेष ध्यान दिया जा जा रहा है ताकि एक बार जिन बस्तियों को पेय जलापूर्ति सुनिश्चित कर

दी गई उन्हें दोबारा ऐसी समस्या का सामना नहीं करना पड़े।

जल गुणवत्ता निगरानी तथा समीक्षा

ग्रामीण समुदायों को स्वच्छ तथा सुरक्षित पेयजल उपलब्ध कराने के उद्देश्य से फरवरी 2006 में राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल गुणवत्ता निगरानी तथा समीक्षा कार्यक्रम शुरू किया गया। कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीणों को पेयजल की गुणवत्ता, साफ-सफाई मुद्दों पर जागरूक भी करना था। कार्यक्रम के तहत सभी ग्राम पंचायतों में बुनियादी स्तर के पाँच कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण दिया गया तथा उन्हें जल की गुणवत्ता जाँचने की किट भी मुहैया कराई गई। इस कार्यक्रम के तहत राज्यों को शत-प्रतिशत सहायता दी जाती है। 1 अप्रैल, 2009 से राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल गुणवत्ता निगरानी तथा समीक्षा कार्यक्रम को राष्ट्रीय पेयजल कार्यक्रम में शामिल कर दिया गया है तथा 5 प्रतिशत सहायता धनराशि के तहत जल गुणवत्ता परीक्षण को सहायता दी गई है।

राष्ट्रीय जल नीति

भारत में जल संसाधन परिषद की छठी बैठक में 28 दिसम्बर, 2013 को केन्द्र व राज्य सरकारों ने मिलकर जल नीति 2012 को मंजूरी दी थी। इसके पूर्व में वर्ष 2002 में जल नीति बनी थी। नई नीति में पहली बार जलवायु के खतरे एवं जल सुरक्षा की चर्चा करते हुए अगले 3-4 दशकों के लिए व्यापक दृष्टिकोण का खाका बनाया गया है इसमें माँग अनुरूप जल उपलब्धता बरकरार रखने व जल भंडारण, कृषि के लिए जल उपलब्धता पर बल दिया गया है। इस नीति के तहत सभी राज्यों में जल नियामक प्राधिकरण के गठन के प्रावधान सहित सरकारी इमारतों पर वर्षा जल संरक्षण और स्थानीय

जलापूर्ति पर जोर दिया गया है।

उपरोक्त सुझावों के अलावा जल संकट के बीच सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि हम पानी की बर्बादी को रोकने का भरपूर प्रयास करें। इसके लिए वर्षा जल संचयन तकनीक और जल संभरण तकनीक को विकसित और प्रत्येक क्षेत्र में प्रसारित करने की जरूरत है। पृथ्वी का अधिकांश जल समुद्र में पड़ा है। जिसका कोई मानवीय प्रयोग नहीं किया जाता है। हमें ऐसी तकनीक विकसित करनी होगी जिससे कि समुद्रों के पानी को मानवीय क्रियाकलापों में प्रयुक्त किया जा सके। समुद्र की निकटवर्ती जगहों पर इस जल से सिंचाई किए जाने योग्य बनाने हेतु भी नई प्रौद्योगिकी को विकसित किए जाने की जरूरत है। स्वच्छ जल की समस्या से निपटने के लिए हमें बेहतर जल प्रबंधन की नीति अपनानी होगी। देश के ग्रामीण क्षेत्रों में मनरेगा के द्वारा हम वर्षा जल संचयन यंत्र का निर्माण कर सकते हैं। साथ ही जल-संभरण तकनीक और तालाबों का निर्माण कर हम जल प्रबंधन की दिशा में उल्लेखनीय योगदान कर सकते हैं। यह खुशी की बात है कि इस दिशा में अब निजी क्षेत्र ने भी रूचि लेना आरम्भ कर दिया है। आज स्वच्छ जल पाना लगभग सपना बनाता जा रहा है। यह वर्तमान पीढ़ी का कर्तव्य है कि अपनी भावी पीढ़ी के लिए संसाधनों को संचित रखे। कुछ समय पहले तक गाँवों में बहुत कम खुदाई पर ही स्वच्छ जल प्राप्त होता था, और आज स्थिति यह है कि गाँवों में भी स्वच्छ जलापूर्ति की सरकारी योजना शुरू करने पर काम चल रहा है। ऐसा इसलिए है क्योंकि हम गाँवों को भी शहरीकरण के दुष्प्रभावों से नहीं बचा पाए हैं। साथ ही गाँवों के संसाधनों का बिना नियोजित और किसी तरह की प्रणाली विकसित किए लगातार दोहन किया जाता रहा है। कई ग्रामीण क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ के भूमिगत जल का व्यापक स्तर पर दोहन निजी कम्पनियों द्वारा पानी के व्यापार में किया जा रहा है और इस पर किसी प्रकार से प्रभावी रोक नहीं लगाई जा सकी है।जल संकट की गम्भीर और चुनौती-पूर्ण स्थिति को देखते हुए हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यदि सरकार शुरू में ही कुछ अग्रोन्मुख कदम उठाती है जिससे सम्पूर्ण नागरिकों को जीने की मूलभूत आवश्यकता वाले इस अमृत की प्राप्ति का कानूनी अधिकार दिया जा सके। इससे सम्बंधित नीति बनाने से लेकर इसके हेतु आवश्यक सभी कदम उठाने की बाध्यता बन जाएगी और तब हम संसाधनों की

सुरक्षा के प्रति भी सचेत होंगे। यदि ऐसा होता है तो यह भारत के लोगों के लिए ऐसा करने वाला विश्व में पहला देश होगा। आज जल संकट की जो स्थिति बनी हुई है ऐसे में सरकार का यह दायित्व है कि वह जल के प्रति ऐसी नीति लाए जो लोगों को स्वच्छ और सुरक्षित पेयजल का कानूनी अधिकार दे। क्योंकि यह सर्वविदित है कि जल मानव को जीवित रखने के लिए ऑक्सीजन के बाद सबसे अहम तत्व है। ऐसे में यदि सरकार खाद्य सुरक्षा की तरह स्वच्छ और सुरक्षित पेयजल का अधिकार सभी नागरिकों को दे तो यह न केवल लोगों के लिए सबसे कल्याणकारी कदम होगा बल्कि इसके साथ संविधान के अनुच्छेद 21 में वर्णित गरिमामय जीवन जीने के अधिकार का क्रियान्यवयन भी सिद्ध करेगा।इसके साथ ही यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि हमें जन-जागरूकता और लोगों को इस दिशा में शिक्षित करने की सर्वाधिक जरूरत है। यह प्रत्येक आम जनता का नैतिक, मानवीय, कानूनी कर्तव्य है कि वह इस सीमित और अमूल्य संसाधन के संरक्षण और सीमित उपयोग के प्रति सचेत हों। केवल सरकारी नीतियों, कार्यक्रमों, योजनाओं के भरोसे रहकर अपने कर्तव्यों से विमुख होने की आदत मानवीय प्रवृत्ति बन चुकी है, जिसका त्याग किया जाना चाहिए। यह भविष्यवाणी भी कई बार की जा चुकी है कि अगला विश्वयुद्ध जल के लिए होगा और विश्व के तमाम देशों और देशों के भीतर राज्यों के बीच जल बँटवारे को लेकर तनाव की स्थिति बनती रही है। अगर हम अब भी नहीं चेते तो हमारी इस सुन्दर सृष्टि का अस्तित्व निरन्तर असुरक्षित होता जाएगा।

खेत का पानी खेत में

यदि खेतों में ढाल का प्रतिशत अधिक है तो ढाल की विपरीत दिशा में हल या अन्य उपलब्ध कृषि यंत्रों द्वारा खेतों की गहरी जुताई करना चाहिये, इससे वर्षा का पानी खेत में अधिक गहराई तक अवशोषित होगा एवं उसके नीचे की ओर बहने की गति कम होगी। अंततोगत्वा भूमि क्षरण की दर में कमी आयेगी। ढाल की विपरीत दिशा में जुताई करने से हल द्वारा निर्मित नालियों में पानी अधिक समय तक खेत में ठहरेगा। जिससे भूमि में जल की प्रतिशत मात्रा में वृद्धि होगी।

भू-समतलीकरण एवं मेढ़बंदी

अधिक ढालू भूमियों का

समतलीकरण किया जा सकता है। समतलीकरण करने से इन भूमियों के ऊपर से वर्षा जल के बहाव में रूकावट आयेगी एवं भूमि का क्षरण भी कम होगा। भूमि ढाल के प्रतिशत की अपेक्षा वर्षा जल दुगुनी गति से बहता है, अतः ढाल को जितना कम किया जायेगा भूमि पर पानी के बहाव की गति दुगुनी मात्रा में कम होगी। इस प्रकार ढाल के प्रतिशत को कम करके भूमि कटाव को कम किया जा सकता है एवं भूमि में जल की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। यदि ढालू खेतों का समतलीकरण किया गया है तो इन समस्त खेतों के चारों ओर मेढ़ बनाना चाहिये जिससे खेत का पानी एवं खेत की मिट्टी खेत में ही रहे।

खेत के ऊंचे स्थान पर शोक पिट एवं बारो पिट का निर्माण

ढालू खेतों के ऊंचे समतल स्थान पर शोक पिट एवं बारो पिट का निर्माण किया जाता है, ये संरचनायें ऊंचे स्थान के पानी को नीचे नहीं बहने देतीं एवं इन संरचनाओं के माध्यम से खेत का पानी खेत में अवशोषित होते रहता है, जिससे मिट्टी का कटाव भी कम होता है। शोक पिट एवं बारो पिट छोटी-छोटी संरचनायें होती हैं। अतः इनके निर्माण में अधिक खर्च नहीं आता है।

सम्मोच रेखाओं पर खेती का निर्माण

अत्यधिक ढलान वाले खेत जिनको समतल करना आसान नहीं होता है वहां पर कंटूर ट्रेंच का निर्माण किया जाता है। इन खेतों के निचले हिस्से में फलदार वृक्षों का रोपण करना चाहिये, इस प्रकार की खंतियों का निर्माण करने से खेत में अधिक पानी रूकता है एवं मृदा कटाव में कमी आती है।

बरसात में कैसे करें जल संग्रहण

सम्मोच रेखाओं पर असंबद्ध खन्तियों का निर्माण किया जाता है। अत्यधिक ढालू भूमियों पर इन संरचनाओं का निर्माण करना महत्वपूर्ण एवं लाभप्रद कार्य है। स्टेगर्ड ट्रेवेंज के निचले हिस्से में जहां पर मिट्टी एकत्रित होती है वहां पर फलदार एवं बहुउद्देशीय पौधों का रोपण किया जा सकता है। ढालू भूमियों पर इस विधि को अपनाने के निम्न फायदे हैं-

1- अधिक ढाल वाला भूखण्ड छोटे-छोटे में बंट जाता है एवं स्टेगर्ड ट्रेंच लघु जल संचयन तालाब का कार्य करती है। खोदी गई मिट्टी को गड्ढे के निचले हिस्से पर रखा जाता है। जिससे भूमि में नमी बनी रहती है एवं पौधों को मिलती रहती है। **2-**

स्टेगर्ड या कंटिन्यूस ट्रेंवेज के निर्माण से वर्षा जल भूमि पर तीव्र गति से बहता है जिससे मिट्टी कटाव में कमी आती है एवं भूमि में जल का अधिक संचयन होता है। **3-** ढालू पहाड़ियों एवं भूमि में इस प्रकार की संरचनाओं का निर्माण करने के पश्चात वानस्पतिक अवरोध अथवा जो भी वृक्षारोपण किया जाता है उसकी तीव्र वृद्धि होती है व प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा होती है।

तालाबों का निर्माण

रिसन तालाब-मरहान या टिकरा भूमि में जल संरक्षित करने के लिये छोटी डबरी बनायी जाती है जिसे रिसन तालाब कहते हैं। इनका आकार छोटा होता है।इस तालाब की विशेषता यह होती है कि इसमें जो वर्षा जल एकत्रित होता है वह उपलब्ध भूमि कृषि भूमि में रिसन के द्वारा भू जल की मात्रा को बढ़ाता है इसलिए इसमें वर्षा जल अधिक समय तक उपलब्ध नहीं रहता परंतु यह भूमि को नमी प्रदान कर भूमि की भू जल मात्रा की वृद्धि करता है। यह भू जल अपरोक्ष रूप से फसल के लिये लाभकारी होता है।

डबरी

मध्य भूमि में निर्मित होने वाले तालाब को डबरी के रूप में पहचाना जाता है। यह मध्यम आकार के होते हैं। वर्षा जल ऊंचाई से बहता हुआ इसमें एकत्रित होता है एवं लम्बे समय तक संग्रहित रहता है। सिंचाई के लिए इससे जल लिया जाता है।

सामान्य तालाब

निचली भूमि या गभार में जल संरक्षण के लिये तालाब का निर्माण किया जाता है।, क्योंकि यह निचली भूमियों में स्थित होता है इसलिए इसमें वर्षा जल लंबे समय तक संग्रहित रहता है। दूसरी फसल के लिये भी तालाब से पर्याप्त मात्रा में सिंचाई जल उपलब्ध होता है।तालाब निर्माण में इस बात का विशेष ध्यान रखें कि उसमें जल प्रवेश एवं जल निकासी मार्ग अवश्य रूप से बना हुआ हो, तालाब जल संरक्षण तकनीक की एक वृहद संरचना होती है एवं उसकी जल धारण क्षमता का विशेष ध्यान रखना चाहिये। उसकी मेढ़ों के अंदर की तरफ अगर हो सके तो काली मिट्टी का लेप लगायें या पत्थरों से मजबूती प्रदान करें ऐसा करने से मेढ़ों की मिट्टी बहकर तालाब में जमा नहीं होगी एवं तालाब की जल संरक्षण क्षमता का ह्रास नहीं होगा। इन सब तकनीकों को अपनाकर किसान वर्षा जल का समुचित संग्रहण कर उचित समय पर उपयोग कर सकते हैं।

Dalit reading of 1857 mutiny

Kanwal Bharti

The 1857 rebellion is often described as India's first war of Independence. Scholars view it from different perspectives. Right-wing Hindu scholars, as well as some Muslim scholars, see it as a battle to free India from British rule. Scholars with left leanings also agree with them. They see it as a popular uprising against the British. However the Dalit thinkers see it as a crusade launched by the Hindus and the Muslims, especially the Brahmins and the feudal lords, to save their religion from the clutch of social reforms being initiated by the British rulers. And deception was used to make the common people join the revolt.

The Brahmins were so enamoured of their religious system that they believed that it was beyond reproach and did not require any change. The brahmanical religion

remained unscathed even during the 800 years of Muslim rule. The Muslim rulers refrained from meddling in the religious affairs of the Hindus the reason they could rule for 800 years. But for the advent of the British, India would have been under the Muslim rule even today. And one may well ask why no war of independence was fought against the Muslim empire?

policy. It interfered with the religious system and initiated many reforms in the Hindu social order. That was why it had to face a revolt by the Brahmins. In other words, the social-reform agenda of the British led to the movement against them. At least, two major revolts in India were triggered by the social reforms: the Sepoy Mutiny of 1806 in Vellore and the

John Craddock, discontinuing the dress code based on religious and caste identities of the soldiers. They were not allowed to wear turbans or finger rings or sport beards. Instead, he introduced a new uniform cap for all.

The soldiers considered the move as an attempt to convert them into Christianity. The Hindus thought that

It is the intellectual class that lends leadership and momentum to any movement. Unfortunately, the intellectual class that led Indian society was predominantly Brahmin. The Muslim rulers gave all the freedom to the Brahmins and extended every possible privilege and facility to them. But the East India Company did not continue with this

Sepoy Mutiny of 1857. Dr Ambedkar has written that while the Vellore mutiny of 1806 was a small spark, the mutiny of 1857 had turned into a major fire (*Dr Babasaheb Ambedkar: Writings and Speeches*, Volume 12, Page 140).

The sole reason for the mutiny of Vellore was the order issued by the chief commander of the Madras Army,

the new cap was made of cow hide while the Muslims saw the ban on the beard as an interference in their religious practice. The sepoys of both the faiths revolted to preserve their religious customs. Tipu Sultan's family, housed in the fort of Vellore, aided the revolt.

Brahmin scholars have glorified this mutiny as the first independence

struggle against British rule. They have gone to the extent of saying that this event paved the way for the revolt of 1857 (See A. Rangarajan's essay "When the Vellore Sepoys Rebelled" published in *The Hindu, Sunday Magazine*, 6 August 2006)

Was it really a freedom struggle? If it was indeed a freedom movement against the East India Company, why did the soldiers join the Company's army in the first place? Secondly, why did they revolt only after the new order on the uniform was issued? From the foregoing, it can be inferred that the rebellion was not against the East India Company; it was against the regulation that abolished the religious and caste identities of the soldiers. Had it not issued the order, there wouldn't have been any revolt. Then, on what basis was this revolt a struggle for independence? It was not an attempt to end the Company's rule. It was a religious, caste struggle. In that case, we should call it a religious movement and not India's first struggle for independence.

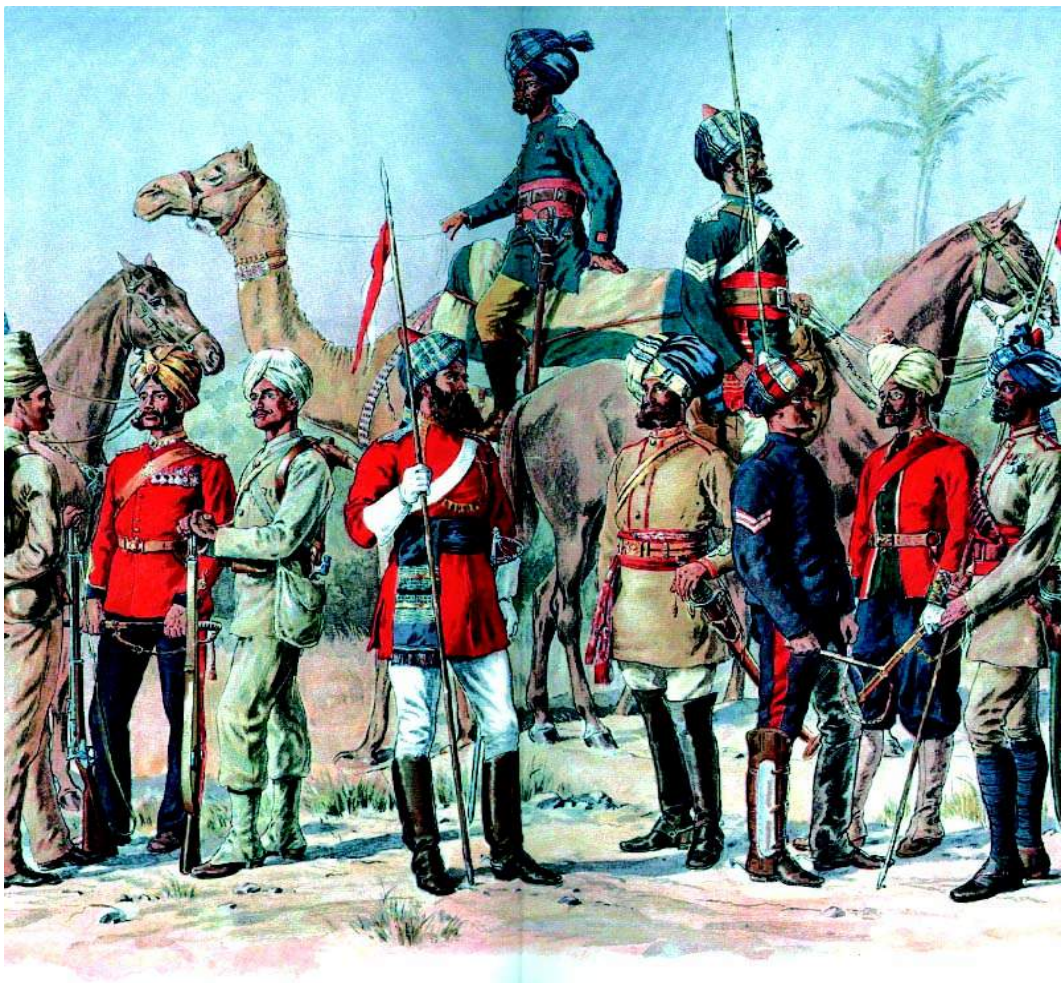

Sepoy Mangal Pandey is credited with launching the revolt of 1857. He was a conservative Brahmin who believed in untouchability. Matadeen was a sweeper in the barracks where Mangal Pandey was stationed. Once, while sweeping the floor, Matadeen touched Pandey's pot accidently. Feeling insulted, the Brahmin sepoy abused and humiliated the sweeper. A fuming Matadeen retorted: "You claim to have become impure by my touching your pot, but you don't lose your purity when you use your teeth to open the cartridges that are lined with the fat of cows and pigs." Pandey came to believe that all Hindu sepoys had become impure. This incident was the trigger for the Sepoy Mutiny.

Was it the only reason behind the revolt? It couldn't have been, because all the soldiers knew that the cartridges were lined with animal fat, although they may not have known the specific animal that the fat came from. Mangal Pandey was a vegetarian and touching animal fat of any kind was taboo for him. Then, why did he start a revolt on the use of cow fat alone? It should also be borne in mind that the soldiers went on to use the same cartridges against the army of the East India Company during the rebellion. How did they open the cartridge then? The real issue was perhaps not the animal fat, but something else.

Cow and pig are associated with the religion of the Hindus and the Muslims, respectively. Hindus regard the cow as a mother and worship it. The Muslims detest the pig as a filthy animal, and it is "haram" (or forbidden) for them to even touch, let

alone consume, it. The communal forces use these animals to start riots between the Hindus and the Muslims.

In 1857, the brahmanical forces employed these animals to start a riot against the British. They found in cow fat a handy weapon in this holy war. They used the pig to woo the Muslims so that they too would join them. It is quite possible that Matadeen was a messenger of the Brahmins.

The issue that the discussion on the Vellore revolt threw up may be relevant here, too. Brahmins scholars, such as Savarkar and Har Dayal, who termed the 1857 mutiny as the first war of independence, didn't care to consider whether there would have been a revolt had the fat of cow or pig not been used in cartridges or had it been used and the soldiers never came to know of it. If the main reason was indeed animal fat, it is evident that there wouldn't have been a revolt. Then on what basis can it be called a war of independence?

In fact, the revolt was started to protect a religious system. It was an issue of freedom of the Hindu religion, and it had nothing to do with the freedom of the country. Some conservative Brahmins, and a few kings and nawabs whose kingdoms were vulnerable to the British Raj, had planned this revolt.

Let's discuss the basic reasons for the 1857 Sepoy Mutiny. The Bengal Army started the revolt. It was a Bengal Army in name only. It had no Bengali soldiers. The army consisted of the sepoys mainly drawn from the upper castes of Awadh and Doaba region. The Brahmins dominated the army. They were communal and casteist. Therefore, this army became easy prey to the Brahmin conspiracy.

The Brahmins of Awadh and Benaras were outraged by the rules and regulations introduced by the British for social reforms. They wanted the British rulers, like the Mughals, to not interfere in their religious affairs. But the British rulers found some of the interventions necessary

Dr Ambedkar has written about some of these social reforms (*Dr Babasaheb Ambedkar: Writings and Speeches*, Volume 12, pp 115-137). He observes that all social ills are based on religion. A Hindu man or woman does everything according to his or her religion. He eats, drinks, bathes and wears clothes, as dictated by his religion. His religion determines his birth, marriage and cremation. Consequently, a social ill, which may appear as a sin from a secular point of view, is not a sin for him because his religion terms it a virtue. So, a sinful Hindu retorts, “If I sin, I am sinning

religiously." (ibid, p 115)

A society is always conservative. It changes only when it comes under pressure to change. Whenever pressure is exerted, a struggle between the new and the old order ensues. Therefore, any social evil, especially one that is based on religion, can never be eradicated without the help of the law.

In order to put a stop to the social ills, the East India Company considered it necessary to enact five laws (ibid, pp 115-132). All these laws were enacted before the mutiny of 1857. The sixth law was introduced after the mutiny, in 1860, under the section 375 of the Penal Code to curb sexual harassment and rape of women. The five laws introduced before the mutiny were as follows:

- Bengal Regulation Act, 1795 to stop the "koorha" tradition among the Brahmins in Benaras province, in which women were killed by the men of the family. Until then, capital punishment didn't apply to the Brahmins. For the first time, the Brahmins were brought within the purview of the death penalty.
- Regulation Act 1802 to stop the sacrifice of children in the name of religion.
- Regulation Act 1829 to end the Sati tradition. This tradition required women to be burnt to death in the pyre of her dead husband.
- Caste Abolition Act 1850 which was an extension of Section 9 of the Regulation Act 1832. It was put in place to stop the practice of untouchability.
- Hindu Widow Remarriage Act 1856 to legalize remarriage of Hindu widows.

It is clear that these rules interfered with the religious practices of the Brahmins. For the first time, a Brahmin, who was exempt from capital punishment, could face death himself after being found guilty of murder. It was more disturbing to the Brahmins of Benaras, who did not hesitate to kill a girl or a woman as part of the "koorha" tradition. This was the spark that ignited the revolt.

These laws aimed at social reform sparked the revolt by the Bengal Army in 1857. Lord Dalhousie's Doctrine of Lapse (the policy of annexing a state if the ruler was deemed incompetent or died without a natural heir) also contributed to the trigger. The states of Satara, Jaitpur, Sambalpur, Baghat, Udaipur, Jhansi and Nagpur were brought under Company rule. The existence of certain other states was also in danger. Even the Mughal Emperor Bahadur Shah Jafar was afraid and could not decide whether to support the British or to oppose them.

Let us take the example of Jhansi, as its role in the revolt is well known. It was a dependency of the Peshwa. Its ruler, Gangadhar, was a tyrant. He didn't have a son, so he adopted his nephew and wanted to declare the

nephew his heir apparent. But the Company didn't let him. Even though his ancestors had always been loyal, the Company declared Jhansi a part of its territory by offering a pension of Rs 5,000 to the queen. She refused the compensation and declared, "I will never give away my Jhansi." She fought the British to save her kingdom.

All these rulers wanted to regain their kingdoms. This is why they joined the Brahmins in the revolt.

At this juncture we should pose a question was it a freedom struggle? If so, had the concept of "Akhanda Swaraj" or "undivided India" taken shape in an India that was still divided into hundreds of kingdoms? The answer is a resounding no. The Hindu concept of *Swaraj* took shape only after the year 1900. The vision of complete independence did not exist till the Round Table Conference of 1930. Gandhi and other Congress leaders were still demanding dominion status for India.

If this was the state of affairs in the 20th century, does it make any sense to treat the 1857 revolt as a struggle for independence? It was foolish talk of those fools who wanted freedom for the Hindus alone. It did not bother them that, had the revolt succeeded by ill luck, the princely kingdoms would have perpetuated the system that had denied the Untouchables their basic human rights. The widows would have been burnt; innocent children would have been sacrificed. Feudal lords would have had the girls and women kidnapped and raped. All kinds of violence and brutality of the Brahmins would have been pardonable. Neither would there have been a single, uniform law nor would everyone have been treated as equal before the law.

The Brahmin scholars who called the 1857 mutiny the first freedom struggle and dreamt of an "Akhand Hindu Bharat" or "undivided hindu India" were blind to the fact that the revolutionary work of uniting India was actually being carried out by the British.

As the saying goes, patience pays off. There have been millions of the downtrodden, Dalits, Backwards, Tribals and labourers. Why shouldn't there have been a turnaround in their fortune after thousands of years of oppression? Though the Brahmins and the kings wanted the revolt to succeed so that they could re-establish the feudal-religious system, destiny favoured the millions of Bahujan.

The revolt could not become pan-India. It was limited to Delhi, Lucknow, Allahabad, Kanpur, Benaras, Jhansi, Gwalior and some parts of Bihar. It was crushed soon after. The soldiers of Bombay and Madras did not participate in the mutiny; rather they helped to crush it. The armies of these two southern provinces consisted mainly of the people from the Untouchable castes. Men from Mahar and Paraiyar castes dominated the armies of Bombay and Madras, respectively. They did not join the revolt of the Brahmins. The mutiny that started in March 1857 came to an end in July the same year. The country bade farewell to a dictatorship and commenced its journey on the path to becoming a democracy.

जगत पाठक पत्रकारिता संस्थान, भोपाल

जगत पाठक पत्रकारिता संस्थान वर्ष 1998 से सतत् रूप से संचालित हो रहा है। इस संस्थान से अध्ययन कर छात्र-छात्राएं प्रिंट व इलैक्ट्रॉनिक मीडिया में अच्छे पदों पर पदस्थ हैं। साथ ही साथ शासकीय पद पर आसीन होकर इस संस्थान को गौरवान्वित कर रहे हैं।

: विषय :

मास्टर ऑफ आर्ट जर्नलिज्म (2 वर्ष)

प्रवेश प्रारंभ

संपर्क सूत्र

विजया पाठक (संचालक) - 9826064596

अर्चना शर्मा - 9754199671

कार्यालय - कार्पोरेट कार्यालय - एफ 116/17, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र.

संस्थान - 28, सुरभि विहार कालोनी, कालीबाड़ी, बी.डी.ए. रोड, भेल, भोपाल, म.प्र.